A READER IN INDIAN PHILOSOPHY

सांख्यदर्शन

मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी सहित

डॉ0 राम नाथ झा
सहायक आचार्य
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विद्यानिधि प्रकाशन
दिल्ली

परिचय

'दर्शन' शब्द का अर्थ

'दृशिर् दर्शने' धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय होने से 'दर्शन' शब्द निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति है- **'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'** अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाय, वह दर्शन है। यह इसका यौगिक अर्थ है। देखने की क्रिया दो प्रकार से होती है- पहली द्रष्टा के द्वारा एवं दूसरी इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण के द्वारा। द्रष्टा की दर्शन क्रिया से अन्तःकरण का तथा इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण की दर्शन क्रिया से बाह्य एवं आन्तरिक जगत् का ज्ञान होता है। द्रष्टा की दर्शन क्रिया नित्यदृष्टि तथा इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण की दर्शन क्रिया अनित्यदृष्टि है। **'न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्,** (बृह. उप. IV.III.23)'। **दृष्टिरिति द्विविधा भवति लौकिकी पारमार्थिकी चेति। तत्र लौकिकी चक्षुःसंयुक्ता अन्तःकरणवृत्तिः, सा क्रियत इति जायते विनश्यति च। या स्वात्मनो दृष्टिः अग्न्युष्णप्रकाशादिवत्, सा च द्रष्टुः स्वरूपत्वान्न जायते विनश्यति च,** (बृह. उप. शां. भा. III.IV. 2)'। दोनों प्रकार की दर्शन क्रियाओं से ही इस संसार की किसी भी वस्तु का ज्ञान होता है। इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से द्रष्टा एवं इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण को ही दर्शन कहा जा सकता है जो कि दर्शन का यौगिक अर्थ है **'एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्'** (यो0सू0 व्या0भा0 I. 4)। परन्तु द्रष्टा एवं इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण के द्वारा दर्शन की क्रिया के अनन्तर उत्पन्न ज्ञान ही अन्य जिज्ञासुओं के लिए शब्दों में निबद्ध किया जाता है। ऐसे शब्दों से निर्मित ग्रन्थों के द्वारा जिज्ञासुजन ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस दृष्टि से शब्दराशि ग्रन्थ भी दर्शन शास्त्र है। यह 'दर्शन' का रूढ़ अर्थ है। क्योंकि व्युत्पत्ति के अर्थ की अपेक्षा रूढ़ अर्थ प्रधान होता है, अतः 'दर्शन' शब्द 'दर्शनशास्त्र' के अर्थ में ही प्रचलित है। दर्शन के क्षेत्र में मुख्य रूप से तत्त्व के स्वरूप; ज्ञान, ज्ञान के साधन, ज्ञान

की प्रामाणिकता आदि तथा आचार के विभिन्न विन्दुओं यथा कर्म, कर्मफल, कर्मस्वातन्त्र्य आदि का विशेष अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र वह विधा है जिसके द्वारा तत्त्व, ज्ञान एवं आचार सम्बन्धी विषयों का अध्ययन कर संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

'साङ्ख्य' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

'साङ्ख्य' शब्द के प्राय: पाँच अर्थ उपलब्ध हैं:-

1. प्रथम

I. सांख्याः प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते॥
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् परिसंख्याय तत्त्वतः॥
सांख्याः सह प्रकृत्या तु निस्वहवः पञ्चविंशकः॥

(महा. XII. 306. 42-43)

II. 'पञ्चविंशतितत्त्वानां सङ्ख्याविचारः। तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः साङ्ख्य इति साङ्ख्यपदव्युत्पत्तिः प्रच्छते। (रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्यकृत साङ्ख्यतत्त्वविलास)

III. 'कस्मात् साङ्ख्यमिति उच्यते। सम्यक् क्रमपूर्वकं ख्यानं कथनं यस्यां सा सङ्ख्या क्रमपूर्वा विचारणा। यत् तामधिकृत्य कृतं तस्मात् साङ्ख्यमिति उच्यते शास्त्रम्। (देवतीर्थस्वामी या विश्वेश्वरदत्त मिश्रकृत साङ्ख्यतत्त्व)

'साङ्ख्य' शब्द का अर्थ 'सङ्ख्या' पर आधारित है । ऐसा प्रतीत होता है कि दार्शनिक दृष्टि से पहली बार तत्त्वों की सङ्ख्या निश्चित की गयी तथा क्रमपूर्वक इन तत्त्वों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया, जिसके आधार पर इस दार्शनिक विचारधारा का नाम 'साङ्ख्य' प्रचलित हुआ। (टी. जी. माईणकर का साङ्ख्यकारिका के ऊपर लिखा गया परिचय)

2. द्वितीय

सम्+चक्षिङ् धातु - ख्याञ् दर्शने + अङ् प्रत्यय + टाप् से 'सङ्ख्या' शब्द निष्पन्न होती है, जिसका अर्थ है सम्यक् ख्याति या ज्ञान। 'सङ्ख्या' शब्द से अण् प्रत्यय जुड़ने से 'साङ्ख्य' शब्द बनता है जिसका अर्थ है वह शास्त्र

जो सम्यक् ज्ञान को तात्त्विक विश्लेषण का आधार मानता है तथा अन्ततः कैवल्य प्राप्ति में सहायक बनता है। उर्पयुक्त अर्थ की पुष्टि में निम्नलिखित उद्धरण प्रमाण हैं-

I. **चर्चा सङ्ख्या विचारणा।** (अ. को. I. V. 2)

यहाँ 'सङ्ख्या' का अर्थ है प्रमाण द्वारा प्रमेयों की परीक्षा।

II. **सङ्ख्या सम्यग्विवेकेन आत्मकथनम्।** (सां॰ प्र॰ भा॰ I. 1) यहाँ विज्ञानभिक्षु 'साङ्ख्य' को योगरूढ़ के वर्ग में रखते हुए उसके व्युत्पत्त्यात्मक अर्थ 'सम्यक् ज्ञान' के साथ-साथ रूढ़ार्थ 'साङ्ख्य शास्त्र' ग्रहण करते हैं तथा यह सिद्ध करते हैं कि 'श्वेताश्वतर' आदि श्रुति तथा 'गीता' आदि स्मृति ग्रन्थों में प्रयुक्त 'साङ्ख्य' शब्द 'साङ्ख्यशास्त्र' के वाचक हैं।

III. **सङ्ख्या नाम सम्यग्विवेकेन तत्त्वकथनमिति।** (स्वा. भा. 1)

साङ्ख्यकारिका पर स्वामिनारायणभाष्य के रचयिता श्रीकृष्णवल्लभाचार्य की 'साङ्ख्य' शब्द की व्याख्या विज्ञानभिक्षु के समान है।

3. तृतीय

'साङ्ख्यमिति पुरुषनिमित्तेयं संज्ञा। सङ्खस्य इमे साङ्ख्याः। तालव्यो वा शकारः शङ्खनामा आदि पुरुषः'। (चरित्रसिंहगणि के द्वारा षड्दर्शनसमुच्चय पर लिखी गयी टिप्पणी)।

यहाँ सङ्ख नामक व्यक्ति के आधार पर 'साङ्ख्य' का नामकरण हुआ। (टी. जी. माईणकर का साङ्ख्यकारिका के ऊपर लिखा गया परिचय)

४. चतुर्थ

इमे सत्त्वरजस्तमांसि गुणा मया दृश्याः अहं च तेभ्योऽन्यः, तद्व्यापारसाक्षिभूतो नित्यो गुणविलक्षण आत्मेति चिन्तनम्। एष साङ्ख्यः। (गी. शां. भा. XIII. 24)

'सांख्य' को परिभाषित करते हुए आचार्य शङ्कर कहते हैं - 'सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण मेरे अर्थात् पुरुष के द्वारा देखे जाने योग्य हैं। मैं इनके व्यापार का साक्षीभूत होने से नित्य एवं इनसे विलक्षण हूँ- यह आत्मचिन्तन है।' इस प्रकार के ज्ञान से सम्बद्ध हाने से यह सांख्य है।

5. पञ्चम

महाभारत में साङ्ख्यदर्शन को 'परिसङ्ख्यानदर्शन' भी कहा गया है:-

'साङ्ख्यज्ञानं प्रवक्ष्यामि परिसङ्ख्यानदर्शनम्'। (XII. 306.26)

साङ्ख्यदर्शनमेतावत् परिसङ्ख्यानदर्शनम्। (XII. 306. 42)

महाभारत 'सांख्यदर्शन' को 'परिसंख्यानदर्शन' के रूप में परिभाषित करता है। महाभारत की यह परिभाषा दार्शनिक समस्या की मूलभावना को प्रस्तुत करते हुए उसके निदान की ओर हमें उन्मुख करती है। प्रस्तुत पारिभाषिक शब्द 'परिसंख्यान' की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या निम्नलिखित है -

परिसंख्यानम्- परितः ज्ञातानां सहाय्येन क्रमशोऽज्ञातानां जिज्ञासायाः रागस्य च स्वभावतः परिवर्जनम्। यथा पुरतः ज्ञातभूतजातानां निरीक्षणेन विचारणया विवेकेन सन्निकर्षेण च पञ्चभूतानां ज्ञानं तेषां च जिज्ञासायाः रागस्य च परिवर्जनम्। तदनन्तरं तेनैव विधिना पञ्चतन्मात्राणां इन्द्रियाणां मनसः अह्ङ्कारस्य महत्तत्वस्य त्रिगुणात्मिकायाः प्रकृतेश्च ज्ञानं पुनश्च परिवर्जनम्। अन्ततश्च साक्षिणः पुरुषस्यानुभूतिः शुद्धबुद्धमुक्त-स्वरूपज्ञानत्वात् प्रकृतेः केवलीभावश्चेति। संख्यानम् सांख्यशास्त्रस्य ज्ञानस्य क्रमप्रक्रिया । लेखकः

'परिसंख्यान' वस्तुतः एक व्यावहारिक एवं ज्ञानमीमांसीय पद्धति की ओर संकेत करता है जो मनुष्य को स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतम विषय तक पहुँचाती है तथा अन्ततः लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक बनती है। प्रस्तुत प्रसंग में इस पद्धति के माध्यम से जिज्ञासु प्रकृति के स्थूल तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करते हुए सूक्ष्म तत्त्वों तक पहुँचता है तथा अन्ततः प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर तीन गुणों से रहित, स्वतन्त्र, केवल पुरुष को जान लेता है। यही सांख्यदर्शन का लक्ष्य है। 'सांख्य' की प्रस्तुत परिभाषा उपलब्ध परिभाषाओं में सांख्यसिद्धान्तों के अत्यधिक अनुकूल प्रतीत होता है, क्योंकि इसके माध्यम से हमें एक विशेष प्रकार की दृष्टि, व्यवहार की निश्चित दिशा, ज्ञानप्रक्रिया के विभिन्न स्तर तथा सांख्यशास्त्र के लक्ष्य का परिचय प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आचार्य श्नार के द्वारा प्रदत्त 'सांख्य' सम्बन्धी अवधारणा महाभारत की अवधारणा से भिन्न नहीं है।

उपर्युक्त पाँच प्रकार के व्युत्पत्त्यर्थों के आधारपर यह कहा जा सकता है कि- 'साङ्ख्य' एक दार्शनिक चिन्तन का शास्त्र है जो सङ्ख्या के आधार पर तत्त्वों का क्रमपूर्वक विश्लेषण कर प्रकृति-पुरुष के विवेकज्ञान द्वारा मनुष्य के आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखों का एकान्तिक एवं आत्यन्तिक रूप से विनाश करने में सहायता प्रदान करता है तथा उसको अपने लक्ष्य कैवल्य तक पहुँचाता है।

साङ्ख्यसाहित्य

अनुपलब्ध

1. साङ्ख्यसूत्र	कपिल
2. षष्टितन्त्र	पञ्चशिख (जयमङ्गला टीका के आधार पर)
3. राजवार्तिक	अज्ञात

उपलब्ध

1. साङ्ख्यकारिका	**ईश्वरकृष्ण**
I. साङ्ख्यकारिकाभाष्य या गौडपाद भाष्य	गौडपाद
II.. माठरवृत्ति (साङ्ख्यकारिका की टीका)	माठराचार्य
III जयमङ्गला (साङ्ख्यकारिका की टीका)	शङ्कराचार्य
IV. साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी (साङ्ख्यकारिका की टीका)	वाचस्पतिमिश्र
a. तत्त्वकौमुदीव्याख्या	भारती यति
b. तत्त्वार्णव या तत्त्वामृतप्रकाशिनी	राघवानन्दसरस्वती
c. तत्त्वचन्द्र	नारायणतीर्थ
d. कौमुदीप्रभा	स्वप्नेश्वर
e. साङ्ख्यतत्त्वविलास या साङ्ख्यवृत्तिप्रकाश या साङ्ख्यार्थसाङ्ख्यायिका	रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य
f. साङ्ख्यतत्त्वविभाकर	वंशीधरमिश्र
g. सारबोधिनी	शिवनारायणमिश्र
h. किरणावली	श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण

V.	युक्तिदीपिका(साङ्ख्यकारिका की टीका)	अज्ञात
VI.	सुवर्णसप्तति	,,
VII.	साङ्ख्यचन्द्रिका	नारायणतीर्थ
VIII.	साङ्ख्यकौमुदी	रामकृष्ण भट्टाचार्य
IX.	स्वामिनारायणभाष्य (साङ्ख्यकारिकाभाष्य)	श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण

2. साङ्ख्यसूत्र

I.	अनिरुद्धवृत्ति	अनिरुद्ध
II.	साङ्ख्यवृत्तिसार	महादेव वेदान्ती
III.	साङ्ख्यप्रवचनभाष्य	विज्ञानभिक्षु
IV.	लघुसाङ्ख्यवृत्ति	नागेशभट्ट
IV.	साङ्ख्यतत्र	विश्वेश्वरदत्तमिश्र या देवतीर्थस्वामी

3. तत्त्वसमाससूत्र

I.	सर्वोपकारिणी	अज्ञात
II.	साङ्ख्यसूत्रविवरण	,,
III.	साङ्ख्यक्रमदीपिका या साङ्ख्याल्ङ्कार या साङ्ख्यसूत्रप्रवेशिका	,,
IV.	साङ्ख्यतत्त्वयाथार्थ्यदीपन	भावागणेश
V.	अन्वयात्मकव्याख्या (इस ग्रन्थ का कोई नाम नहीं है)	क्षेमेन्द्र दीक्षित
VI.	तत्त्वसमाससूत्रवृत्ति	अज्ञात

4.	साङ्ख्यसार	विज्ञानभिक्षु
5.	साङ्ख्यतत्त्वप्रदीप	कविराज यति
6.	साङ्ख्यार्थतत्त्वप्रदीपिका	भट्टकेशव
7.	तत्त्वमीमांसा	कृष्णमिश्र
8.	साङ्ख्यपरिभाषा	,,

आलेख
पुरुष-प्रकृति
महत्
अहङ्कार
सात्विक अहङ्कार
राजस अहङ्कार
तामस अहङ्कार
एकादशेन्द्रिय
पञ्चतन्मात्रा
मनस्
पञ्चज्ञानेन्द्रिय
पञ्चकर्मेन्द्रिय
नासिका जिह्वा चक्षु त्वचा श्रोत्र
उपस्थ पायु पाद पाणि वाक्
गन्ध रस रूप स्पर्श शब्द
पृथिवी जल तेजस् वायु आकाश
स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर महाभूत
षाट्कौशिक अष्टादशविषयवात्मक
महत् अहङ्कार एकादशेन्द्रिय पञ्चतन्मात्रा

महत्
भावसर्ग
सांसिद्धिक
प्राकृतिक
वैकृतिक
प्रत्यय सर्ग
धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य
यतमान व्यतिरेक एकेन्द्रिय वशीकार
अणिमा लघिमा गरिमा महिमा प्राप्ति प्राकाम्य वशित्व ईशित्व
या कामावसायित्व
विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि
(अगले पृ० पर देखें)
1. प्रकृति सम्बन्धी तुष्टि
2. उपादान सम्बन्धी तुष्टि
3. काल सम्बन्धी तुष्टि
4. भाग्य सम्बन्धी तुष्टि
5. अदिव्य शब्द सम्बन्धी तुष्टि
6. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी तुष्टि
7. अदिव्य रूप सम्बन्धी तुष्टि
8. अदिव्य रस सम्बन्धी तुष्टि
9. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी तुष्टि
1. ऊह
2. शब्द
3. अध्ययन
4. आध्यात्मिक दु:ख का नाश
5. आधिदैविक दु:ख का नाश
6. आधिभौतिक दु:ख का नाश
7. सुहृत्प्राप्ति
8. दान
(अगले पृ० पर देखें)

विपर्यय

तमस् या अविद्या=8	मोह या अस्मिता=8	महामोह या राग=10	तामिस्र या द्वेष=18	अन्धतामिस्र या अभिनिवेश=18
1. अव्यक्त सम्बन्धी अविद्या	1. अणिमा सम्बन्धी मोह	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी राग	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी द्वेष	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी अभि०
2. महत् सम्बन्धी अविद्या	2. लघिमा सम्बन्धी मोह	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी राग	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी द्वेष	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी अभि०
3. अहङ्कार सम्बन्धी अविद्या	3. गरिमा सम्बन्धी मोह	3. दिव्य रूप सम्बन्धी राग	3. दिव्य रूप सम्बन्धी द्वेष	3. दिव्य रूप सम्बन्धी अभि०
4. शब्द सम्बन्धी अविद्या	4. महिमा सम्बन्धी मोह	4. दिव्य रस सम्बन्धी राग	4. दिव्य रस सम्बन्धी द्वेष	4. दिव्य रस सम्बन्धी अभि०
5. स्पर्श सम्बन्धी अविद्या	5. प्राप्ति सम्बन्धी मोह	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी राग	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी द्वेष	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी अभि०
6. रूप सम्बन्धी अविद्या	6. प्राकाम्य सम्बन्धी मोह	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी राग	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी द्वेष	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी अभि०
7. रस सम्बन्धी अविद्या	7. वशित्व सम्बन्धी मोह	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी राग	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी द्वेष	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी अभि०
8. गन्ध सम्बन्धी अविद्या	8. ईशित्व सम्बन्धी मोह	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी राग	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी द्वेष	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी अभि०
		9. अदिव्य रस सम्बन्धी राग	9. अदिव्य रस सम्बन्धी द्वेष	9. अदिव्य रस सम्बन्धी अभि०
		10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी राग	10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी द्वेष	10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी अभि०
			11. अणिमा सम्बन्धी द्वेष	11. अणिमा सम्बन्धी अभि०
			12. लघिमा सम्बन्धी द्वेष	12. लघिमा सम्बन्धी अभि०
			13. गरिमा सम्बन्धी द्वेष	13. गरिमा सम्बन्धी अभि०
			14. महिमा सम्बन्धी द्वेष	14. महिमा सम्बन्धी अभि०
			15. प्राप्ति सम्बन्धी द्वेष	15. प्राप्ति सम्बन्धी अभि०
			16. प्राकाम्य सम्बन्धी द्वेष	16. प्राकाम्य सम्बन्धी अभि०
			17. वशित्व सम्बन्धी द्वेष	17. वशित्व सम्बन्धी अभि०
			18. ईशित्व सम्बन्धी द्वेष	18. ईशित्व सम्बन्धी अभि०

(पिछले पृ० का शेष)

अशक्ति

इन्द्रिय सम्बन्धी अशक्ति =11	तुष्टि विपर्यय सम्बन्धी अशक्ति=9	सिद्धि सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति=8
1. बहरापन	1. प्रकृति सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति	1. ऊह सम्बन्धी तुष्टिरूप अशक्ति
2. स्पर्शग्रहण का असामर्थ्य	2. उपादान सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति	2. शब्द " " " "
3. अन्धापन	3. काल सम्बन्धी तुष्टि "	3. अध्ययन " " " "
4. रस ग्रहण का असामर्थ्य	4. भाग्य सम्बन्धी तुष्टि "	4. आध्यात्मिक दु:खनाश सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
5. गन्ध ग्रहण का असामर्थ्य	5. अदिव्य शब्द सम्बन्धी तुष्टि "	5. आधिदैविक " " " "
6. गूंगापन	6. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी तुष्टि "	6. आधिभौतिक " " " "
7. हस्त का असामर्थ्य	7. अदिव्य रूप सम्बन्धी तुष्टि "	7. सुहृत्प्राप्ति सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
8. पाद का असामर्थ्य	8. अदिव्य रस सम्बन्धी तुष्टि "	8. दान सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
9. नपुंसकत्व	9. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी तुष्टि "	
10. गुदा दोष		
11. मन का असामर्थ्य		

सङ्केताक्षरसूची

अ. को.	अमरकोशः
अ. को. रा. टी.	अमरकोशरामाश्रमीटीका
कि.	किरणावली
कृ.	कृष्णा
गी. शां. भा.	गीताशाङ्करभाष्यम्
गौ. पा. भा.	गौडपादभाष्यम्
त. सं. हे.	तर्कसङ्ग्रहहेत्वाभासः
न. न्या. भा. प्र.	नव्यन्यायभाषाप्रदीपः
नि.	निरुक्तम्
प्र. पा. भा. गु. आ.	प्रशस्तपादभाष्ये गुणनिरूपणे आर्षप्रकरणम्
बृ. उ.	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृ. उ. शां. भा.	बृहदारण्यकोपनिषच्छाङ्करभाष्यम्
महा.	महाभारतम्
मा. वृ.	माठरवृत्तिः
यु. दी.	युक्तिदीपिका
यो.सू.व्या.भा.	योगसूत्रव्यासभाष्यम्
वा.	वाचस्पत्यम्
श. क. द्रु.	शब्दकल्पद्रुमः
स. द. सं. सा. द.	सर्वदर्शनसङ्ग्रहे साङ्ख्यदर्शनम्
सां. का.	साङ्ख्यकारिका
सां. त. कौ.	साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी
सां. त. वि.	साङ्ख्यतत्त्वविभाकरः

सां.प्र.भा.	साङ्ख्यप्रवचनभाष्यम्
सां. सू.	साङ्ख्यसूत्रम्
सां. सू. वृ.	साङ्ख्यसूत्रवृत्तिः
सां. सू. वृ. सा.	साङ्ख्यसूत्रवृत्तिसारः
सा. बो.	सारबोधिनी
स्वा. भा.	स्वामिनारायणभाष्यम्

विषयसूची

प्रथम अध्याय

तत्त्वमीमांसा

व्यक्तं महदादिबुद्धिरहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि, अव्यक्तं प्रधानम्, ज्ञः पुरुषः, एवमेतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि व्यक्ताव्यक्तज्ञाः कथ्यन्ते[1]।

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥
प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि[2]॥

व्यक्तम्

महत्ः–महान् बुद्धिः[3]। अध्यवसायो बुद्धिः[4]। विनिश्चयश्चिति-सन्निधानादापन्नचैतन्याया बुद्धेः सोऽध्यवसायः[5]। सा च बुद्धिरष्टाङ्गिका सात्त्विकतामसरूपभेदात्[6]।

तत्त्वमीमांसा

साङ्ख्य दर्शन में **तत्त्वों** की सङ्ख्या पच्चीस है। महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय एवं पाँच महाभूत **व्यक्त**, प्रधान **अव्यक्त** तथा पुरुष **ज्ञ** हैं। इस प्रकार व्यक्त, अव्यक्त एवं ज्ञ में पच्चीस तत्त्व समाहित हैं।

पुरुष के द्वारा प्रधान का दर्शन तथा प्रधान के द्वारा पुरुष का कैवल्य सम्पन्न करने के लिये पङ्गु और अन्ध के समान दोनों का संयोग होता है जिससे **सृष्टि** होती है।

प्रकृति से **महत्**, महत् से **अहङ्कार**, अहङ्कार से **पाँच तन्मात्रा** तथा **ग्यारह इन्द्रियाँ** इन सोलह तत्त्वों का समूह अभिव्यक्त होता है। इन सोलह के समूह में अन्तर्भूत पाँच तन्मात्राओं से **पाँच महाभूत** आविर्भूत होते हैं।

व्यक्त

महत् :- महत् **बुद्धि** है। **अध्यवसाय** बुद्धि का धर्म है। चेतन पुरुष के संयोग से चैतन्य को प्राप्त एवं निश्चयात्मिका वृत्ति से सम्पन्न होना बुद्धिका **अध्यवसाय** है। बुद्धि सात्त्विक एवं तामस के भेद से आठ प्रकार का है।

धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्[7] ॥

1. धर्मः अभ्युदयनिःश्रेयसहेतुः। तत्र यागदानाद्यनुष्ठानजनितो धर्मोऽभ्युदयहेतुः। अष्टाङ्गयोगानुष्ठानजनितश्च निःश्रेयसहेतुः[8] ।

2. ज्ञानं प्रकाशोऽवगमो भानमिति पर्यायाः। तच्च द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं चेति। i. तत्र बाह्यं नाम वेदाः शिक्षाकल्पव्याकरण-निरुक्तच्छन्दोज्यौतिषाख्यषडङ्गसहिताः, पुराणानि न्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चेति। ii. आभ्यन्तरं प्रकृतिपुरुषज्ञानम्। इयं प्रकृतिः सत्त्वरजसस्तमसां साम्यावस्था, अयं पुरुषः सिद्धो निर्गुणो व्यापी चेतन इति। तत्र बाह्यज्ञानेन लोकपङ्क्तिर्लोकानुराग इत्यर्थः। आभ्यन्तरेण ज्ञानेन मोक्ष इत्यर्थः[9] ।

3. विरागः वैराग्यं रागाभावः। तस्य यतमानसंज्ञा, व्यतिरेकसंज्ञा, एकेन्द्रियसंज्ञा, वशीकारसंज्ञा इति चतस्रः संज्ञाः। i. रागादयः कषायाश्चित्तवर्तिनः तैरिन्द्रियाणि यथास्वं विषयेषु प्रवर्त्यन्ते, तन्मात्र प्रवर्तिषत विषयेष्विन्द्रियाणीति तत्परिपाचनायारम्भः प्रयत्नो यतमानसंज्ञा।

धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इसके सात्त्विक रूप हैं। इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य इसके तामस रूप हैं।

1. लौकिक (अभ्युदय) एवं पारलौकिक (निःश्रेयस) सुख का कारण **धर्म** है। यज्ञ, दान आदि के सम्पादन से उत्पन्न धर्म **लौकिक** सुख का तथा अष्टाङ्ग योगरूप साधन से उत्पन्न धर्म **निःश्रेयस** का कारण है।

2. ज्ञान के पर्याय प्रकाश, अवगम, भान आदि हैं। वह ज्ञान बाह्य एवं आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का है। (i) उनमें **बाह्य** ज्ञान शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् एवं ज्यौतिषरूप षडङ्ग सहित चार वेद एवं अठारह पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र हैं। (ii) प्रकृति तथा पुरुष का ज्ञान **आभ्यन्तर** है। प्रकृति और पुरुष के ज्ञान से तात्पर्य है- 'सत्त्व, रजस् और

तमस् की साम्यावस्था **प्रकृति** है तथा नित्य, निगुर्ण, सर्वव्यापक तथा चेतन **पुरुष** है'। बाह्य ज्ञान से लोक में **अनुराग** तथा आभ्यन्तरज्ञान से **मोक्ष** होता है।

3. राग का अभाव **विराग** एवं विराग ही **वैराग्य** है। उस विराग की यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय तथा वशीकार ये चार प्रकार की संज्ञायें हैं।

(i) राग, द्वेष आदि चित्त के दोष हैं। इनके द्वारा इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त की जाती हैं। इन विषयों में ये इन्द्रियाँ प्रवृत्त न हों, इसके लिए इन दोषों की शुद्धि अपेक्षित है। एतदर्थ किया गया आरम्भरूप प्रयत्न **यतमान** नामक वैराग्य है।

(ii) परिपाचने चानुष्ठीयमाने केचित्कषायाः पक्वाः, पक्ष्यन्ते च केचित्, तत्रैवं पूर्वापरीभावे सति पक्ष्यमाणेभ्यः कषायेभ्यः पक्वानां व्यतिरेकेणावधारणं व्यतिरेकसंज्ञा। (iii) इन्द्रियप्रवर्तनासमर्थतया पक्वाना-मौत्सुक्यमात्रेण मनसि व्यवस्थापनम् एकेन्द्रियसंज्ञा। iv. औत्सुक्यमात्रस्यापि निवृत्तिरुपस्थितेष्वपि दृष्टानुश्रविकविषयेषु या संज्ञात्रयात् पराचीना सा वशीकारसंज्ञा[10] ।

4. ऐश्वर्यम् ईश्वरभावः, तच्चाष्टगुणम्[11] । i. अत्र अणिमा अणुभावो यतः शिलामपि प्रविशति। ii. लघिमा लघुभावो यतः सूर्यमरीचीनालम्ब्य सूर्यलोकं याति। iii. गरिमा गुरुभावो यतो गुरुर्भवति। iv. महिमा महतो भावो यतो महान् सम्भवति। v. प्राप्तिः यतोऽङ्गुल्यग्रेण स्पृशति चन्द्रमसम्। vi. प्राकाम्यम् इच्छानभिघातो यतो भूमावुन्मज्जति निमज्जति च यथोदके। vii. वशित्वं यतो भूतभौतिकं वशीभवत्यवश्यम्।

ii. उपर्युक्त राग, द्वेष आदि चित्त के दोषों के शमन करने के प्रयत्न करने पर कुछ तो शान्त हो जाते हैं और कुछ भविष्य में शान्त होने को रह जाते हैं। इस प्रकार इनके शान्त होने में पौर्वापर्य या क्रम उपस्थित होने पर भविष्य में बचे हुए दोषों को शान्त करने के लिये प्रयत्न करना **व्यतिरेक** नामक वैराग्य है।

iii. यतमान एवं व्यतिरेक के द्वारा नष्ट राग, द्वेष आदि का इन्द्रिय की प्रवृत्ति में असमर्थ हो जाने के कारण शुद्ध किन्तु विषय की इच्छा के रूप

में बचे हुए दोषों का मन में रह जाना **एकेन्द्रिय** नामक वैराग्य है। iv. सुखरूप चन्दन, माला आदि दृष्ट विषय तथा तथा स्वर्ग आदि वैदिक विषय प्राप्त हो जाने पर भी उनमें उत्सुकता मात्र का अभाव **वशीकार** नामक वैराग्य है। यह पूर्वोक्त तीन वैराग्यों के बाद होता है।

4. ऐश्वर्य स्वामिभाव है और उसके आठ भेद हैं:- i. **अणिमा** अणुभाव (सूक्ष्मता) है, जिससे साधक शिला में भी प्रवेश करता है। ii. **लघिमा** लघुता (हल्कापन) है, जिससे साधक सूर्य की किरणों के सहारे सूर्यलोक में पहुँचता है। iii. **गरिमा** गुरुता (भारीपन) है, जिससे साधक भारी होता है। iv. **महिमा** महत्त्व है, जिससे साधक महत् परिमाण को प्राप्त होता है। v. **प्राप्ति** वह है, जिससे साधक अङ्गुलि के अग्र भाग से चन्द्रमा को स्पर्श करता है। vi. **प्राकाम्य** इच्छा की बाधा रहित पूर्ति है, जिससे साधक जल के समान पृथ्वी के अन्दर से ऊपर निकल कर फिर उसी में प्रवेश करता है। vii. **वशित्व** वह है जिससे पृथ्वी आदि भूत तथा उससे उत्पन्न घट, पट, आदि भौतिक पदार्थ निश्चित रूप से साधक के अधीन होते हैं।

viii. ईशित्वं यतो भूतभौतिकानां प्रभवस्थितिलयानामीष्टे। यच्च कामावसायित्वं सा सत्यसङ्कल्पता, येन यथास्य सङ्कल्पो भवति भूतेषु तथैव भूतानि भवन्ति[12]।

तामसास्तु तद्विपरीता बुद्धिधर्माः। अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्या-भिधानाश्चत्वार इत्यर्थः[13]। तत्र धर्माद्विपरीतोऽधर्मः, एवमज्ञानमवैराग्य-मनैश्वर्यमिति, एवं सात्त्विकैस्तामसैः स्वरूपैरष्टाङ्गा बुद्धिस्त्रिगुणाद-व्यक्तादुत्पद्यते[14]।

viii. **ईशित्व** वह है, जिससे साधक सभी भूतों तथा भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और नाश में समर्थ होता है। इसी का दूसरा नाम **कामावसायित्व** है जिसका अर्थ सत्यसङ्कल्पता है, जिससे साधक अभिलाषा मात्र से किसी भी वस्तु से अभीष्ट वस्तु बना लेता है।

बुद्धि के सात्त्विकरूप के विपरीत तामसरूप अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य ये चार हैं। उनमें धर्म से विपरीत **अधर्म** है। इसी तरह **अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य** भी ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य के विपरीत हैं। इस

प्रकार सात्त्विक एवं तामस के स्वरूप भेद से आठ प्रकार की बुद्धि त्रिगुणात्मक अव्यक्त से आविर्भूत होती है।

सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृताश्च धर्माद्याः।
दृष्टाः करणाश्रयिणः कार्याश्रयिणश्च कललाद्याः[15] **॥**
त्रिविधा भावाश्चिन्त्यन्ते[16] **।**

भाव तीन प्रकार के हैं। सांसिद्धिक (स्वतः सिद्ध), प्राकृतिक (अकस्मात् उत्पन्न) और वैकृतिक (नैमित्तिक)। धर्म आदि आठ भाव **करणाश्रयी*** तथा कलल आदि भाव **कार्याश्रयी#** हैं।

* **करणं बुद्धिम् आश्रयन्त इति करणाश्रयिणः बुद्धिनिष्ठाः धर्माद्या अष्टौ भावाः**। सा. बो. 43

साङ्ख्य दर्शन में बुद्धि करण है। इस करण के आश्रय में रहने के कारण धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य एवं अनैश्वर्य करणाश्रयी हैं।

\# **कललं वीर्यरजसोर्मिश्रीभावः**। सा. बो. 43, **कललबुद्बुदमांसपेशी-करण्डाङ्गप्रत्यङ्गव्यूहाः गर्भस्थस्य, ततो विनिर्गतस्य बालस्य बाल्यकौमार-यौवनवार्धकानीति**। सां त. कौ. 43, **बुद्बुदः शुक्रस्याधोभावेन शोणितस्योर्ध्वभावेनावस्थानम्। मांसपेशी त्वगाद्यर्थं पिण्डाद्याकारिता**। सा.बो. 43, **करण्डः ततोऽप्यधिककठिनतरोभागः**। सा.बो. 43,, **अङ्गं शिरकरचरणादि। प्रत्यङ्गम् अङ्गुल्यादि एते सर्वे व्यूहाः संस्थानरूपा गर्भस्थावस्थाः, ततो निर्गतस्य बालकैशोरपौगण्डयौवनवार्धकादि**। सा. बो. 43

शुक्र और शोणित का मिश्रित रूप कलल है। आदि शब्द से बुद्बुद, मांसपेशी, करण्ड, अङ्ग, प्रत्यङ्ग, बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था तथा बृद्धावस्था को लिया गया है। शुक्र का अधोभाव तथा शोणित का ऊर्ध्वभाग में स्थित होना बुद्बुद है। त्वचा आदि के विकास के लिये गर्भ का सघन होना मांसपेशी है। मांसपेशी का और अधिक विकसित होना करण्ड है। शिर, हाथ, पैर आदि अङ्ग हैं। अङ्गुलि आदि प्रत्यङ्ग हैं। ये सभी गर्भ में विकसित होने के कारण गर्भ शरीर के भाव हैं। गर्भ से निकलकर शरीर की बाल्यावस्था, कौमारावस्था, यौवनावस्था तथा बृद्धावस्था भी शरीर के भाव हैं। इस प्रकार कलल आदि शरीररूप कार्य के आश्रय में रहने के कारण कार्याश्रयी हैं।

त्रिविध भावों का वर्णन इस प्रकार है:-

1. तत्र सांसिद्धिकास्तावत् यथा कपिलस्य भगवतः परमर्षेरादिसर्गे उत्पन्नस्य इमे चत्वारो भावाः सहोत्पन्ना धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यमिति[17] **।**

2. प्राकृतिको नाम ब्रह्मणः पुत्राः किल सनकादयो बभूवुः। तेषामुत्पन्नकार्यकारणानां शरीरवतां षोडशवर्षाणामेवेते चत्वारो भावा अकस्मादेवोत्पन्ना निधिदर्शनवत्[18] ।

3. वैकृतिका यथा- आचार्यादिमूर्तिमधिकृत्य उत्पन्ना वैकृतिका इत्युच्यन्ते। आचार्यं निमित्तं कृत्वा ज्ञानमुत्पद्यते, ज्ञानात् वैराग्यं, वैराग्याद्धर्मो धर्मादैश्वर्यम्। एवमेते चत्वारो भावा अस्मदादिष्वपि वर्तन्ते[19]। आचार्यमूर्तिरपि विकृतिरिति तस्माद्वैकृता एते भावा उच्यन्ते[20] ।

प्रतीयतेऽनेनेति प्रत्ययो बुद्धिः, तस्य सर्गः[21] । गुणप्रवृत्तिकार्यो हि सर्गः[22] ।

एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पञ्चाशत्[23] ॥

1. सांसिद्धिक भाव :- जैसे सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए भगवान् कपिल के धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यें चार भाव साथ ही उत्पन्न हुए। अतः उन्हें सांसिद्धिक भाव कहते हैं। 2. **प्राकृतिक भाव :-** जैसे ब्रह्मा के सनक आदि चार पुत्रों में सोलह वर्ष की अवस्था में कार्य-कारण पूर्वक अचानक धर्म आदि चार भाव उत्पन्न हो गये, या जैसे अकस्मात् किसी को निधि की प्राप्ति हो जाती है।

3. वैकृतिक भाव :- जैसे आचार्य की मूर्ति को निमित्त बनाकर उत्पन्न होने वाले धर्म आदि भाव हैं। आचार्य की मूर्ति को निमित्त बनाकर ज्ञान होता है। ज्ञान से वैराग्य, वैराग्य से धर्म तथा धर्म से ऐश्वर्य होता है। इस प्रकार ये चार भाव हम लोगों में भी विद्यमान हैं। प्रकृति से उत्पन्न होने से आचार्य की मूर्ति भी विकृति है। इस विकृतिरूप मूर्ति के आधार पर प्राप्त ज्ञान आदि भाव **वैकृतिक*** कहलाते हैं।

* **सांसिद्धिकाश्च भावाः प्राकृतिका वैकृताश्च धर्माद्याः।** सां.का. 43

भावास्त्रिविधाश्चिन्त्यन्ते- सांसिद्धिकाः प्राकृताः वैकृताश्च। गौ. पा. भा. 43

वैकृताः वैकृतिकाः नैमित्तिकाः। सां.त.कौ. 43

साङ्ख्यकारिका एवं गौडपादभाष्य में 'वैकृतिक' के स्थान पर 'वैकृत' शब्द का

प्रयोग हुआ है। साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी में भाव के दो भेद स्वीकार किये गये हैं- सांसिद्धिक एवं वैकृतिक या नैमित्तिक।

जिससे प्रतीति अर्थात् ज्ञान हो, उसे **प्रत्यय** या **बुद्धि** कहते हैं, उसका सर्ग **प्रत्ययसर्ग** है। गुणों की प्रवृत्तिसम्बन्धी अभिव्यक्ति **सर्ग** है। विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि ये चार बुद्धि के परिणाम हैं और गुणों के न्यूनाधिक्य एवं पारस्परिक अभिभव के कारण इनके पचास भेद हैं।

1. विपर्ययः अज्ञानम् अविद्या[24]। 2. वैकल्यादसामर्थ्यम् अशक्तिः। 3. चिकीर्षितादूनेन निवृत्तिस्तुष्टिः। 4. यथेष्टस्य साधनं सिद्धि[25]। यथा कस्यचित् स्थाणुदर्शने स्थाणुरयं पुरुषो वेति संशयः[26]। संशयबुद्धिः विपर्ययः[27]। अशक्तिर्यथा तमेव स्थाणुं सम्यग् दृष्ट्वा संशयं छेत्तुं न शक्नोतीत्यशक्तिः। एवं तृतीयस्तुष्ट्याख्यो यथा तमेव स्थाणुं ज्ञातुं संशयितुं वा नेच्छति किमनेनास्माकमित्येषा तुष्टिः। चतुर्थः सिद्ध्याख्यो यथा आनन्दितेन्द्रियः स्थाणुमारूढां वल्लिं पश्यति शकुनिं वा तस्य सिद्धिर्भवति स्थाणुरयमिति[28]।

तत्र विपर्ययाशक्तितुष्टिषु यथायोगं सप्तानाञ्च धर्मादीनां ज्ञानवर्जमन्तर्भावः, सिद्धौ च ज्ञानस्येति[29]।

पञ्च विपर्ययभेदा भवन्त्यशक्तिश्च करणवैकल्यात्।
अष्टाविंशतिभेदा तुष्टिर्नवधाष्टधा सिद्धिः[30]॥

1. अज्ञान या अविद्या **विपर्यय** है। 2. इन्द्रिय की विकलता से उत्पन्न असामर्थ्य **अशक्ति** है। 3. कार्य करने की अनिच्छा **तुष्टि** है। 4. सभी प्रकार की इच्छाओं का साधन **सिद्धि** है। इसको उदाहरण के द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है- जैसे कि किसी स्थाणु के दर्शन में यह संशय होता है कि यह ठूँठ वृक्ष है या पुरुष। संशयबुद्धि ही **विपर्यय** है। **अशक्ति** वह है जिसमें स्थाणु को समुचित रूप से देखकर भी संशय को दूर नहीं किया जा सकता। **तुष्टि** वह है जिसमें स्थाणु के ज्ञान या संशय के लिये इच्छा का अभाव होता है। **सिद्धि** वह है जिसमें प्रसन्न इन्द्रिय से स्थाणु में लिपटी हुई लता अथवा पक्षी को देखता है, वहाँ **यह स्थाणु है** ऐसा स्पष्ट ज्ञान होता है।

विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि में धर्म आदि सात भावों का यथायोग्य

अन्तर्भाव है। ज्ञान का **सिद्धि** में अन्तर्भाव है। **विपर्यय** के पाँच भेद, **अशक्ति** के अट्ठाईस भेद, **तुष्टि** के नौ भेद और **सिद्धि** के आठ भेद होते हैं।

1. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा यथासङ्ख्यं तमोमोहमहामोह-तामिस्रान्धतामिस्रसञ्ज्ञकाः पञ्च विपर्ययविशेषाः[31] ।

भेदस्तमसोऽष्टविधो मोहस्य च दशविधो महामोहः।
तामिस्रोऽष्टादशधा तथा भवत्यन्धतामिस्रः[32] ॥

(i) अष्टस्वव्यक्तमहदहङ्कारपञ्चतन्मात्रेष्वनात्मस्वात्मबुद्धिरविद्या तमः। अष्टविधविषयत्वात्तस्याष्टविधत्वम्[33] । **(ii) देवा ह्यष्टविधमैश्वर्यमासा-द्यामृतत्वाभिमानिनोऽणिमादिकमात्मीयं शाश्वतिकमभिमन्यन्ते,**

1. विपर्यय :- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश क्रमशः **तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धतामिस्र** नाम से **पाँच विपर्यय विशेष** हैं। तमस् और मोह के आठ-आठ प्रकार, महामोह के दस प्रकार, तामिस्र और अन्धतामिस्र के अठारह-अठारह प्रकार हैं। **i.** पुरुषभिन्न प्रकृति, महत्, अहङ्कार और पाँच तन्मात्राओं में पुरुषभावना **अविद्या** या **तमस्** है। प्रकृति आदि के आठ होने से यह आठ प्रकार का है। **ii. देव$** अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर अपने अमरत्व का अभिमान करते हुए इन अणिमा आदि ऐश्वर्यों को नित्य मानते हैं।

$ 1. दीव्यन्तीति देवाः।

देवः सुरे घने राज्ञि देवमाख्यातमिन्द्रिये। अ. को. रा. टी. I. I. 7

प्रकाशित करने वाले देव हैं। सुर, मेघ तथा राजा के अर्थ में प्रयुक्त 'देव' शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं। इन्द्रिय अर्थ में 'देव' शब्द का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में होता है।

2. देवाश्चासुराश्च। तस्यैव प्रजापतेः प्राणा वागादयः। शास्त्रजनितज्ञानकर्मभाविता द्योतनाद्देवा भवन्ति। त एव स्वाभाविकप्रत्यक्षानुमान-जनितदृष्टप्रयोजनकर्मज्ञानभाविता असुराः। स्वेष्वेवासुषु रमणात् सुरेभ्यो वा देवेभ्योऽन्यत्वात्। बृह. उप. शां. भा. I. III. 1

आचार्य शङ्कर के अनुसार शास्त्रजनित ज्ञान और कर्म से भावित प्राण (इन्द्रियाँ) ही द्योतनशील होने के कारण देव हैं; तथा वही इन्द्रियाँ स्वाभाविक प्रत्यक्ष एवं अनुमान जनित दृष्ट प्रयोजन वाले कर्म और ज्ञान से भावित होने पर असुर हैं। अपने

ही असुओं (प्राणों या इन्द्रियों) में रमण करने के कारण अथवा सुर अर्थात् देवों से भिन्न होने के कारण ये असुर कहलाते हैं।

3. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। नि. VII. 15

यास्क के अनुसार जो दान देता है या प्रकाशित करता है या प्रकाशित होता है या द्युलोक अथवा ज्ञानलोक (प्रकाशलोक) में रहता है, वह देव है।

सेयम् अस्मिता मोहोऽष्टविधैश्वर्यविषयत्वादष्टविधः[34] **। (iii) शब्दादिषु पञ्चसु दिव्यादिव्यतया दशविधेषु विषयेषु रञ्जनीयेषु राग आसक्तिः महामोहः**[35] **। (iv) 'तामिस्रः' द्वेषः 'अष्टादशधा। शब्दादयो दश विषया रञ्जनीयाः स्वरूपतः, ऐश्वर्यन्त्वणिमादिकं न स्वरूपतो रञ्जनीयं किन्तु रञ्जनीयशब्दाद्युपायाः। ते च शब्दादय उपस्थिताः परस्परेणोपहन्यमाना-स्तदुपायाश्चाणिमादयः स्वरूपेणैव कोपनीया भवन्तीति। शब्दादिभिर्दशभिः सहाणिमाद्यष्टकमष्टादशधेति, तद्विषयो द्वेषः तामिस्र अष्टादशः**[36] **।**

यह **अस्मिता** या **मोह** है। मोह के विषय ऐश्वर्य के आठ प्रकार के होने के कारण यह भी आठ प्रकार का है।

iii. दिव्य और लौकिक रूप से **दस*** प्रकार के शब्द, स्पर्श आदि राग के उत्पादक विषयों में **राग** या आसक्ति **महामोह** है। यह अपने विषय के दस प्रकार के होने के कारण स्वयं भी दस प्रकार का है। **iv.** द्वेष को **तामिस्र** कहते हैं, जो अठारह प्रकार का है। दस प्रकार के शब्द आदि विषय स्वरूप से ही राग के उत्पादक हैं। अणिमा आदि ऐश्वर्य स्वरूप से राग के उत्पादक नहीं हैं, किन्तु राग के उत्पादक शब्द आदि के उपाय हैं। ये शब्द आदि भोग्य रूप में उपस्थित होने पर एक-दूसरे से उपहत होते रहते हैं। इनके उपाय होने के कारण अणिमा आदि भी अनिष्टकारी हो जाते हैं। इस प्रकार दस शब्द आदि विषयों के साथ अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य मिल कर अठारह हो जाते हैं। उपर्युक्त अठारह का विषय **द्वेष** या **तामिस्र** है। अपने आश्रय के अठारह प्रकार के होने से यह द्वेष भी अठारह प्रकार का है।

* **दिव्याः अलौकिकाः योगिमात्रगम्या तन्मात्रलक्षणाः सूक्ष्माः शब्दादयः, अदिव्याः लौकिकाः अस्मदादिगम्याः स्थूलाः शब्दादयः।** सा. बो. 48

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये विषय दिव्य और अदिव्य के भेद से दस प्रकार के हैं। इनका सूक्ष्मरूप तन्मात्र है जो योगियों के ज्ञान का विषय होने से दिव्य है। स्थूल रूप भौतिक है जो सामान्य मनुष्यों के ज्ञान का विषय होने से अदिव्य है।

(v) अभिनिवेशोऽन्धतामिस्रः। देवाः खल्वणिमादिकमष्टविधमैश्वर्यमासाद्य दश शब्दादीन् विषयान् भुञ्जानाः 'शब्दादयो भोग्यास्तदुपायाश्चाणिमादयोऽस्माकमसुरादिभिर्मोपघानिषत' (न विहतिं प्रापन् इत्यर्थः। हो हन्तेः इति कुलम्' इति बिभ्यति। तदिदं भयमभिनिवेशः अन्धतामिस्रः[37]। सोऽयं पञ्चविधो विकल्पो विपर्ययोऽवान्तरभेदाद् द्वाषष्टिरिति[38]।

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम्[39] ॥
बाधिर्यं कुष्ठितान्धत्वं जडताजिघ्रता तथा।
मूकता कौण्यपङ्गुत्वे क्लैव्योदावर्तमन्दताः[40] ॥

v. **अभिनिवेश** अर्थात् भय **अन्धतामिस्र** है। देवता अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर शब्द आदि विषयों का भोग करते हुए डरते रहते हैं कि **हमारे शब्द आदि भोग तथा उनके अणिमा आदि उपाय असुरों द्वारा विनष्ट न कर दिये जायें** । यही भय **अभिनिवेश** या **अन्धतामिस्र** है। अपने विषय के अठारह प्रकार का होने से यह स्वयं भी अठारह प्रकार का होता है। उपर्युक्त पाँच प्रकार का **विपर्यय** सूक्ष्म भेदों के कारण **बासठ#** है।

 # तमसः अविद्यायाः, मोहस्य अस्मितायाश्च अष्टविधो भेदः, महामोहः रागः दशविधः, तामिस्रः द्वेषः अष्टादशधा, अन्धतामिस्रः अभिनिवेशः अष्टादशधा भवति इत्यन्वयः। सा. बो. 48

तमस् के आठ, मोह के आठ, महामोह के दश, तामिस्र के अठारह एवं अन्धतामिस्र के अठारह-इस प्रकार विपर्यय के कुल बासठ भेद हैं।

2. अशक्ति :- ग्यारह इन्द्रियदोषों एवं सतरह बुद्धिदोषों (नौ तुष्टिविपर्यय दोषों तथा आठ सिद्धिविपर्यय दोषों)- के साथ मिलकर **अशक्ति** अट्ठाईस भेदवाली है। बहरापन, स्पर्शग्रहण का असामर्थ्य, अन्धापन, रसग्रहण का असामर्थ्य, गन्धग्रहण का असामर्थ्य, गूँगापन, हस्त का असामर्थ्य, पाद का असामर्थ्य, नपुंसकत्व, गुदादोष तथा मन का असामर्थ्य - ये ग्यारह **इन्द्रियदोष** हैं।

तुष्टयो नवधेति तद्विपर्ययास्तन्निरूपणान्नवधा भवन्ति, एवं सिद्धयोऽष्टाविति तद्विपर्ययास्तन्निरूपणादष्टौ भवन्तीति[41]।

आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पञ्च च नव तुष्टयोऽभिमताः[42] ॥

शरीरशरीरिणोर्विशेषमुपलिप्समानेन योगिना यदनात्मन्यात्मबुद्धिरवस्थाप्यते, सा खलु आध्यात्मिकी तुष्टिः[43] । तस्याध्यात्मिक्यश्चतस्रस्तुष्टयो भवन्ति[44] ।

1. 'विवेकसाक्षात्कारो हि प्रकृतिपरिणामभेदस्तञ्च प्रकृतिरेव करोतीति कृतं तद्ध्यानाभ्यासेन, तस्मादेवमेवास्व वत्स' इति येयमुपदेष्टव्यस्य शिष्यस्य तुष्टिः प्रकृतौ सा तुष्टिः प्रकृत्याख्या[45] ।

2. 'या तु प्राकृत्यपि (प्रकृत्या निर्वृता (अण) प्राकृती) विवेकख्यातिर्न सा प्रकृतिमात्राद्भवति, मा भूत् सर्वस्य सर्वदा, तन्मात्रस्य सर्वान् प्रत्यविशेषात्, प्रव्रज्यायास्तु सा भवति, तस्मात् प्रव्रज्यामुपाददीथाः, कृतन्ते ध्यानाभ्यासेनायुष्मन् इति उपदेशे या तुष्टिः सा उपादानाख्या[46] ।

तुष्टियाँ नौ प्रकार की हैं, उन तुष्टियों के विपर्यय भी उन्हीं से निरूपित होने के कारण नौ प्रकार के हैं। ये तुष्टिविपर्यय दोष हैं। इसी प्रकार सिद्धियाँ आठ प्रकार की हैं तथा उन सिद्धियों के विपर्यय भी उन्हीं से निरूपित होने के कारण आठ प्रकार के हैं। ये सिद्धिविपर्यय दोष हैं।

3. **तुष्टि** :- प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य-ये चार **आध्यात्मिक** तुष्टि तथा पाँच विषयों से वैराग्य होने के कारण उत्पन्न पाँच **बाह्य** तुष्टि- इस प्रकार **तुष्टियाँ** नौ हैं। शरीर (प्रकृति) और आत्मा (पुरुष) के अन्तर को जानने की इच्छा रखने वाले मनुष्य का शरीर आदि जड़ तत्त्वों में आत्मबुद्धि होना **आध्यात्मिक** तुष्टि है। उसकी आध्यात्मिक तुष्टियाँ चार प्रकार की होती हैं। **i.** विवेकज्ञान प्रकृति का ही परिणाम विशेष है और उसे प्रकृति ही उत्पन्न करती है, इसलिए आत्मा के ध्यान का अभ्यास व्यर्थ है। अत: **वत्स! इसी प्रकार रहो** ऐसे उपदेश से शिष्य को प्रकृति विषयक जो तुष्टि होती है वही **प्रकृति** नामक तुष्टि है। **ii.** प्रकृति का परिणाम विशेष होकर भी विवेक ज्ञान केवल प्रकृति से नहीं होता, अन्यथा सब के प्रति समान रूप से होने के कारण सभी को सर्वदा विवेक ज्ञान होता रहेगा। इसके विपरीत वह संन्यास से उत्पन्न होता है। इसलिये **आयुष्मन् ! संन्यास**

ही ग्रहण करो, तुम्हारा ध्यान का अभ्यास व्यर्थ है ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह **उपादान** नामक तुष्टि है।

3. 'या तु प्रव्रज्यापि न सद्यो निर्वाणदेति सैव कालपरिपाकमपेक्ष्य सिद्धिं ते विधास्यति, अलमुत्तप्ततया तव' इति उपदेशे या तुष्टिः सा कालाख्या[47] **।**

4. 'या तु न प्रकृतेर्न कालान्नाप्युपादानाद्विवेकख्यातिः, अपितु भाग्यादेव[48] **। तस्माद्भाग्यमेव हेतुर्नान्यत्' इति उपदेशे या तुष्टिः सा भाग्याख्या**[49] **।**

बाह्यास्तुष्टयः पञ्चविषयोपरमात्, शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेभ्य उपरतोऽर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनात्। वृद्धिनिमित्तं पाशुपाल्यवाणिज्य-प्रतिग्रहसेवाः कार्या एतदर्जने दुःखम्, अर्जितानां रक्षणे दुःखम्, उपभोगात् क्षीयत इति क्षयदुःखम्, तथा विषयोपभोगसङ्गे कृते नास्तीन्द्रियाणामुपशम इति सङ्गदोषः, तथा न अनुपहत्य भूतान्युपभोग इत्येष हिंसादोषः। एवमर्जनादिदोषदर्शनात् पञ्चविषयोपरमात् पञ्च तुष्टयः[50] **।**

iii. **संन्यास भी अपवर्ग नहीं दे सकता है। वह कालान्तर में परिपक्व होकर ही तुम्हें विवेक ज्ञान देगा, तुम्हारे उद्विग्न होने से कोई लाभ नहीं**, ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह **काल** नामक तृष्टि है।

iv. **विवेक ज्ञान न प्रकृति से, न काल से और न संन्यास ग्रहण से, अपितु भाग्य से ही होता है। इसलिये भाग्य ही हेतु है, अन्य कुछ नहीं** ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह **भाग्य** नामक तुष्टि है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – ये पाँच विषय हैं तथा इनसे वैराग्य होना भी पाँच प्रकार का है। अर्जन, रक्षण, क्षय, भोग, हिंसा– इन पाँच प्रकार के दोषों का दर्शन जब विषयों में होता है तब विषयों से साधक की निवृत्ति ही **बाह्य** तुष्टि है। पाँच प्रकार के दोष ये हैं–धनवृद्धि का कारण पशुपालन, व्यापार, दानग्रहण, तथा सेवा द्वारा धन के अर्जन में दुःख होना, अर्जित धन के संरक्षण में दुःख होना, उपयोग से धन की कमी होने के कारण दुःख होना, विषय के उपभोग से भी इन्द्रियों के शान्त न होने के कारण दुःख होना तथा उपभोग के लिये प्राणियों की हिंसा से सम्बन्धित दुःख होना। इस प्रकार अर्जन आदि दोषों के दर्शन से पाँच विषयों से निवृत्ति **पाँच बाह्य तुष्टियाँ** हैं।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वोऽङ्कुशस्त्रिविधः[51] ॥

विहन्यमानस्य दुःखस्य त्रित्वात्तद्विघातास्त्रय इतीमा मुख्यास्तिस्रः सिद्धयः, तदुपायतया त्वितरा गौण्यः पञ्च सिद्धयः[52] ।

विधिवद् गुरुमुखादध्यात्मविद्यानामक्षरस्वरूपग्रहणम् अध्ययनम्[53] । तत्कार्यं शब्दः, शब्द इति पदं शब्दजनितमर्थज्ञानमुपलक्षयति, कार्ये कारणोपचारात्[54] ।

ऊहः तर्क आगमाविरोधिन्यायेनागमार्थपरीक्षणम्। परीक्षणञ्च संशयपूर्वपक्षनिराकरणेनोत्तरपक्षव्यवस्थापनम्। तदिदं मननमाचक्षत आगमिनः[55] ।

न्यायेन स्वयं परीक्षितमप्यर्थं न श्रद्दधते, न यावद् गुरुशिष्यसब्रह्मचारिभिः सह संवाद्यते। अतः सुहृदां गुरुशिष्यसब्रह्मचारिणां संवादकानां प्राप्तिः सुहृत्प्राप्तिः[56] । दानं च शुद्धिर्विवेकज्ञानस्य 'दैप् शोधने' इत्यस्माद्धातोर्दानपदव्युत्पत्तेः[57] ।

4. सिद्धि :- ऊह, शब्द, अध्ययन, तीन प्रकार के दुःखविनाश, सुहृत्प्राप्ति तथा दान ये आठ **सिद्धियाँ** हैं। विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि ये तीनों सिद्धि के विरोधी हैं। विनष्ट होने वाले दुःखों के तीन प्रकार के होने के कारण उनके विनष्ट दुःख (आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) भी तीन प्रकार के होते हैं। यही तीन **मुख्य सिद्धियाँ** हैं। इनके उपाय अन्य पाँच **गौण सिद्धियाँ** हैं।

i. शास्त्रविधिपूर्वक गुरुमुख से अध्यात्म विद्याओं का श्रवण **अध्ययन** नामक सिद्धि है। **ii.** अध्ययन का कार्य शब्द है। कार्य में कारण के आरोप द्वारा कारणात्मक 'शब्द' पद से शब्द से उत्पन्न अर्थज्ञानात्मक कार्य सूचित होता है। शब्द से अर्थ ज्ञान होना **शब्द** नामक सिद्धि है। **iii.** तर्क अर्थात् शास्त्र के अनुकूल युक्तियों से शास्त्रोक्त विषय की परीक्षा **ऊह** है और यह परीक्षा संशय तथा पूर्वपक्ष के निराकरण द्वारा उत्तर पक्ष या सिद्धान्त पक्ष की स्थापना है। इसे ही शास्त्रज्ञ **मनन** कहते हैं। **iv.** साधक युक्तियों के द्वारा स्वयं परीक्षा किये हुए शास्त्रार्थ या सिद्धान्त में तब तक विश्वास नहीं करता, जब तक कि गुरु, शिष्य और सहपाठियों के साथ संवाद नहीं कर लेता।

इसलिये सुहृदों अर्थात् गुरु, शिष्य तथा सहपाठियों के साथ परस्पर संवाद प्राप्त होना **सुहृत्प्राप्ति** है। **v.** 'दान' पद की निष्पत्ति **शोधन** अर्थ परक दैप् धातु से होने के कारण उसका अर्थ **विवेकज्ञान की शुद्धि** है।

सा च सवासनसंशयविपर्यासानां परिहारेण विवेकसाक्षात्कारस्य स्वच्छप्रवाहेऽवस्थापनम्। सा च न विनादरनैरन्तर्यदीर्घकालसेविताभ्यासपरिपाकाद्भवतीति दानेन सोऽपि संगृहीतः[58]। यथा कश्चिदादावभिहिताध्यात्मिकादिदुःखत्रयेणाभिभूतोऽस्य प्रतीकाराय ऊहं शब्दमध्ययनं वा प्रतिपद्य ज्ञानमधिगम्य मोक्षं यातीति दुःखविघाताय यत्रोहादित्रयमधिकुरुते तदपि सिद्धित्रयम्[59]।

ततश्च एकादशेन्द्रियवधा नवानां तुष्टीनां विपर्ययाः, प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्यानां पञ्चविषयोपरमतुष्टीनां च। अष्टानां सिद्धीनां विपर्यया अनूहादयः। सप्तदशवधा बुद्धेरेवमेकादश सप्तदश चाष्टाविंशति भेदा अशक्तेरभिधीयन्ते[60]। अत्र प्रत्ययसर्गे सिद्धिरुपादेयेति प्रसिद्धमेव। तन्निवारणहेतवस्तु विपर्ययाशक्तितुष्टयो हेयाः[61]।

सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्[62]॥

सन्दिग्ध और विपरीत ज्ञान तथा उनके संस्कारों का परिहार होने पर विमल हुए चित्तवृत्तिप्रवाह में विवेकज्ञान की स्थिति विवेकज्ञान की शुद्धि अर्थात् **दान** है। यह दान गुरु के वाक्यों में आदर, निरन्तरता, लम्बे समय तक किये गये अभ्यास के विना पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। अतः **दान** पद में अभ्यास को भी सिद्धि के साधन के रूप में समझना चाहिये। **vi-viii.** मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक – इन तीन प्रकार के दुःखों से सन्तप्त होकर उनके प्रतीकार के लिये ऊहसिद्धि, अध्ययनसिद्धि और शब्दसिद्धि को प्राप्त कर ज्ञान द्वारा कैवल्य प्राप्त करता है। इस प्रकार तीन प्रकार के दुःखों के विघात के लिए ऊह आदि तीनों सिद्धियों का उपयोग करता है। यही दुःखविघातरूप तीन मुख्यसिद्धियाँ हैं।

इस प्रकार नौ तुष्टिविपर्ययदोष (प्रकृति, उपादान, काल, भाग्य तथा पाँच विषयों से उपरति) तथा आठ सिद्धिविपर्ययदोष (ऊह आदि सिद्धियों का विपर्यय) ये दोनों मिलकर सतरह बुद्धिदोष एवं ग्यारह इन्द्रियदोष – ये

अशक्ति के अट्ठाईस भेद हैं। बुद्धि के इन चतुर्विध परिणामों में **सिद्धि** ही उपादेय है। इस **सिद्धि** के विघातक होने के कारण विपर्यय, अशक्ति और तुष्टि त्याज्य हैं।

समस्त विषयों के सम्बन्ध में होने वाले पुरुष के भोग को बुद्धि ही सम्पादित करती है तथा वही प्रकृति एवं पुरुष के सूक्ष्म भेद को प्रकट करती है।

पुरुषार्थस्य प्रयोजकत्वात् तस्य यत्साक्षात्साधनं, तत् प्रधानम्। बुद्धिश्चास्य साक्षात्साधनं तस्मात्सैव प्रधानम्। यथा सर्वाध्यक्षः साक्षाद्राजार्थसाधनतया प्रधानम्, इतरे ग्रामाध्यक्षादयस्तम्प्रति गुणभूताः। बुद्धिर्हि पुरुषसन्निधानात् तच्छायापत्त्या तद्रूपेव सर्वविषयोपभोगं पुरुषस्य साधयति।

स च बुद्धौ, बुद्धिश्च पुरुषरूपेवेति सा च पुरुषमुपभोजयति। यथार्थालोचनसङ्कल्पाभिमानाश्च यत्तद्रूपपरिणामेन बुद्धावुपसङ्क्रान्ताः, तथेन्द्रियव्यापारा अपि बुद्धेरेव स्वव्यापारेणाध्यवसायेन सहैकव्यापारी-भवन्ति, यथा वा स्वसैन्येन सह ग्रामाध्यक्षादिसैन्यं सर्वाध्यक्षस्य भवति[63]।

अहङ्कारः - अभिमानोऽहङ्कारः[64]। 'यत् खल्वालोचितं मतं च तत्र अहमधिकृतः'। शक्तः खल्वहमत्र, 'मदर्था एवामी विषयाः' 'मत्तो नान्योऽत्राधिकृतः कश्चिदस्ति', 'अतोऽहमस्मि' इति योऽभिमानः सोऽसाधारणव्यापारत्वाद् अहङ्कारः[65]। महतस्तत्त्वान्तरम्[66]। तमुपजीव्य हि बुद्धिरध्यवस्यति कर्तव्यमेतन्मया इति[67]।

पुरुषार्थ का साक्षात् साधन **प्रधान** है। बुद्धि ही साक्षात् साधन है, इसलिये वही **प्रधान** है। जिस प्रकार राजकार्य की सिद्धि में समस्त देश का अध्यक्ष साक्षात् रूप से साधन होने के कारण प्रधान होता है, अन्य ग्रामाध्यक्ष आदि उसकी अपेक्षा अप्रधान होते हैं, उसी प्रकार पुरुष के समीप होने के कारण उस का प्रतिबिम्ब पड़ने से बुद्धि पुरुष सी चेतन प्रतीत होती हुई उसके समस्त विषयभोग को सम्पादित करती है।

वह (विषय भोग) बुद्धि में सम्पन्न होता है और बुद्धि पुरुष के आकार सी हो जाती है। इस प्रकार यह पुरुष को विषयों का ठीक वैसे ही भोग

कराती है जैसे ज्ञानेन्द्रिय, मन तथा अहङ्कार के द्वारा किये गये वस्तु विषयक आलोचन, सङ्कल्प और अभिमान बुद्धि में संक्रमित हो जाते हैं अर्थात् उसी के कार्य बन जाते हैं; कर्मेन्द्रियों के वचन आदि व्यापार भी बुद्धि के **अध्यवसाय** कार्य के साथ मिलकर एक हो जाते हैं तथा समस्त देश के अध्यक्ष की अपनी सेना के साथ मिलकर ग्रामाध्यक्ष आदि की सेना भी उसी की हो जाती है।

अहङ्कार :- मैं इस प्रकार का अभिमान **अहङ्कार** है। दूसरे शब्दों में **आलोचित और सङ्कल्पित विषय में मैं ही अधिकृत हूँ, मैं ही इसे करने में समर्थ हूँ, ये विषय मेरे लिये ही हैं, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई इसमें अधिकृत नहीं है**, अतः **मैं ही हूँ** – इस प्रकार का यह अभिमान असाधारण व्यापार होने के कारण **अहङ्कार** है। वह महत् का परिणमित रूप है। इसी को आधार बनाकर बुद्धि **यह मुझे करना है** ऐसा निश्चय करती है।

तस्माद् द्विविधः प्रवर्तते सर्गः[68] ।
सात्त्विक एकादशकः प्रवर्तते वैकृतादहङ्कारात्।
भूतादेस्तन्मात्रः स तामसस्तैजसादुभयम्[69] ॥

इन्द्रियाणि – प्रकाशलाघवाभ्यामेकादशक इन्द्रियगणः सात्त्विको वैकृतात् सात्त्विकादहङ्कारात्प्रवर्तते[70] **। यद्यप्येकोऽहङ्कारस्तथापि गुणभेदोद्भवाभिभवाभ्यां भिन्नं कार्यं करोतीति**[71] **। सात्त्विकाहङ्कारोपादानकत्वम् इन्द्रियत्वम्**[72] **। इन्द्रस्यात्मनश्चिह्नत्वाद् इन्द्रियम् उच्यते**[73] **। इन् इति विषयाणां नाम, तानिनः विषयान् प्रति द्रवन्तीति इन्द्रियाणि**[74] **। तानि च स्वसंज्ञाभिश्चक्षुरादिभिरुक्तानि**[75] **।**

बुद्धीन्द्रियाणि – बुद्धेर्बाह्यविषयप्रतिपत्तौ द्वारभूतत्वाद् बुद्धीन्द्रियाणीति[76] **।**

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनत्वगाख्यानि[77] **।**

अहङ्कार से दो प्रकार की सृष्टि होती है – **वैकृत*** अहङ्कार से ग्यारह इन्द्रियों की एवं तामस अहङ्कार से पाँच तन्मात्राओं की। राजस अहङ्कार से दोनों की प्रवृत्ति होती है।

*** यदा रजसाभिभूते सत्त्वतमसी भवतस्तदा तस्मात् सोऽहङ्कारस्तैजस इति**

संज्ञां लभते। सात्त्विकोऽहङ्कारो वैकृतिको वैकृतः। तामसोऽहङ्कारो भूतादिसंज्ञितः। गौ. पा. भा. 25

वैकृत, तैजस एवं भूतादि अहङ्कार की तीन विशेष अवस्थाओं को सूचित करने वाले पारिभाषिक शब्द हैं। सत्त्व प्रधान, रजस् प्रधान तथा तमस् प्रधान अहङ्कार क्रमशः वैकृत, तैजस और भूतादि अहङ्कार कहलाते हैं।

इन्द्रिय :- प्रकाशात्मक तथा लघुरूप होने के कारण ग्यारह इन्द्रियों का समूह अहङ्कार का **सात्त्विक** परिणाम है। यद्यपि अहङ्कार एक है, तथापि गुण विशेष के आविर्भाव और तिरोभाव से भिन्न-भिन्न कार्य करता है। जिसकी अभिव्यक्ति में सात्त्विक अहङ्कार उपादान कारण हो वह **इन्द्रिय** है। मन, ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ **इन्द्र** अर्थात् पुरुष के लिङ्ग होने के कारण **इन्द्रिय** कहलाती हैं। **इन्** यह विषयों का नाम है, उन विषयों की ओर जाने वाली इन्द्रियाँ हैं। ये इन्द्रियाँ चक्षु, श्रोत्र आदि अपने-अपने नामों के द्वारा कही गयी हैं।

बुद्धीन्द्रिय :- बुद्धि द्वारा शब्द आदि बाह्य विषयों के ज्ञान में साधन होने से यह बुद्धीन्द्रिय है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसन तथा त्वक् नामक पाँच **बुद्धीन्द्रियाँ** हैं।

तत्र रूपग्रहणलिङ्गं चक्षुः, शब्दग्रहणलिङ्गं श्रोत्रं, गन्धग्रहणलिङ्गं घ्राणं, रसनग्रहणलिङ्गं रसनं, स्पर्शग्रहणलिङ्गं त्वक् इति ज्ञानेन्द्रियाणां संज्ञा[78] ।

कर्मेन्द्रियाणि - कर्म कुर्वन्तीति कर्मेन्द्रियाणि[79] ।

वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः[80] ।

तत्र वाग् वदति, हस्तौ नाना व्यापारं कुरुतः[81] **। पादौ विषमसमनिम्नोन्नतभूप्रदेशेषु क्रामतः, पायुः यथाभुक्तान्नोदकमलमुत्सृजति। उपस्थ आनन्दं करोति पुत्रमुत्पादयतीत्यर्थः**[82] ।

मनः - उभयात्मकमत्र मनः सङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च[83] ॥

एकादशस्विन्द्रियेषु मध्ये मन उभयात्मकम्, बुद्धीन्द्रियं कर्मेन्द्रियञ्च, चक्षुरादीनां वागादीनां च मनोऽधिष्ठितानामेव स्वस्वविषयेषु प्रवृत्तेः[84] ।

रूप के ग्रहण का लिङ्ग **चक्षु**, शब्द के ग्रहण का लिङ्ग **कर्ण**, गन्ध के ग्रहण का लिङ्ग **नासिका**, रस के ग्रहण का लिङ्ग **जिह्वा** तथा स्पर्श के ग्रहण का लिङ्ग **त्वचा** है।

कर्मेन्द्रियः- कार्य करने के कारण ये **कर्मेन्द्रियाँ** हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ नामक पाँच **कर्मेन्द्रियाँ** हैं।

उनमें **वाक्** बोलने का कार्य करती है, **हाथ** विविध प्रकार के व्यापार करते हैं, **पैर** विषम, सम, निम्न एवं उन्नत भूमि पर चलने का कार्य करते हैं। **पायु** (गुदा) ठीक से खाये-पीये हुए अन्न-जल सम्बन्धी मल का परित्याग करता है तथा **उपस्थ** आनन्द प्रदान करने अर्थात् पुत्र आदि उत्पन्न करने का कार्य करता है।

मन :- मन दोनों प्रकार की इन्द्रिय है। यह सङ्कल्पात्मक है तथा इन्द्रियों के सजातीय होने से **इन्द्रिय** भी है। गुणों के विशिष्ट परिणाम के कारण जैसे विविध बाह्य पदार्थ अभिव्यक्त होते हैं, वैसे ही विविध इन्द्रियाँ भी अभिव्यक्त होती हैं। ग्यारह इन्द्रियों में **मन** दोनों ही प्रकार का अर्थात् **ज्ञानेन्द्रिय** और **कर्मेन्द्रिय** है क्योंकि मन से ही संयुक्त होकर चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होती हैं।

करणम् – अन्तःकरणं त्रिविधं बुद्धिरहङ्कारो मन इति। शरीराभ्यन्तरवर्तित्वादन्तःकरणम्। दशधा बाह्यं करणम् (पञ्च कर्मेन्द्रियाणि पञ्च च बुद्धीन्द्रियाणि),[85] विषयमाख्याति विषयसङ्कल्पाभिमानाध्यवसायेषु कर्तव्येषु द्वारी भवति। तत्र बुद्धीन्द्रियाण्यालोचनेन कर्मेन्द्रियाणि तु यथास्वं व्यापारेण[86]।

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या।
सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च[87] ॥

महतोऽध्यवसायः, अहङ्कारस्याभिमानः, सङ्कल्पो मनसो वृत्तिः व्यापारः[88]। त्रयाणामपि करणानां पञ्च वायवो जीवनं वृत्तिः, तद्भावे भावात् तदभावे चाभावात्[89]। तत्र प्राणो नासाग्रहृन्नाभिपादाङ्गुष्ठवृत्तिः,[90] प्राणनान् प्राण एष इत्यभिधीयते[91]। अपानः कृकाटिकापृष्ठपादपायूपस्थपार्श्ववृत्तिः[92]।

करणः– अन्तःकरण तीन हैं - बुद्धि, अहङ्कार तथा मन। ये शरीर के अन्तर्गत होने के कारण **अन्तःकरण** हैं। **बाह्यकरण** दस हैं (पाँच

कर्मेन्द्रिय तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय), ये विषयों के सम्बन्ध में होने वाले सङ्कल्प, अभिमान और निश्चय (अध्यवसाय) में साधन बनते हैं। इनमें **ज्ञानेन्द्रियाँ** आलोचन द्वारा तथा **कर्मेन्द्रियाँ** अपने-अपने यथायोग्य व्यापारों के द्वारा करण बनती हैं। अन्तःकरणों के अपने-अपने लक्षण ही उनके विशिष्ट (असाधारण) तथा प्राण आदि पाँच वायु उनके सामान्य (साधारण) व्यापार हैं।

बुद्धि का **अध्यवसाय**, अहङ्कार का **अभिमान** एवं मन का **सङ्कल्प** - ये तीन प्रकार के अन्तःकरणों के असाधारण व्यापार हैं। अन्तःकरणों में पाँच वायु जीवनधारक तत्त्व हैं। इन पाँच वायु में **प्राण** नामक वायु नासिका के अग्रभाग, हृदय, नाभि, पाद तथा अङ्गूठा में रहता है। सभी इन्द्रियों के प्राणन करने से इसे **प्राण** कहते हैं। **अपान** वायु गर्दन के पिछले भाग, पीठ, पाद, मलत्याग करनेवाली इन्द्रिय, मूत्रत्याग करनेवाली इन्द्रिय एवं पार्श्वों (पसलियों) में रहता है।

इतश्चापक्रमणाद् अपान इत्युच्यते[93]। समानो हृन्नाभिसर्वसन्धिवृत्तिः, उदानो हृत्कण्ठतालुमूर्धभ्रूमध्यवृत्तिः[94]। आरोहणादर्थोत्कर्षे उदान इत्यभि-धीयते[95]। व्यानः त्वग्वृत्तिरिति पञ्च वायवः[96]। शरीरव्यापितया व्यानः[97]।

इन्द्रियाण्येकादश बुद्धिरहङ्कारश्चेति त्रयोदशप्रकारं करणम्। कारकविशेषः करणम्। न च व्यापारावेशं विना कारकत्वम्[98]।

तदाहरणधारणप्रकाशकरम्।
कार्यञ्च तस्य दशधाहार्यं धार्यं प्रकाश्यं च[99]॥

तत्र कर्मेन्द्रियाणि वागादीन्याहरन्ति यथास्वमुपाददते स्वव्यापारेण व्याप्नुवन्तीति यावत्। बुद्ध्यहङ्कारमनांसि तु स्ववृत्त्या प्राणादिलक्षणया धारयन्ति। बुद्धीन्द्रियाणि च प्रकाशयन्ति[100]।

साम्प्रतकालं बाह्यं त्रिकालमाभ्यन्तरं करणम्[101]।

नीचे की ओर जाने के कारण वह **अपान** है। **समान** वायु हृदय, नाभि तथा सभी जोड़ों में रहता है। **उदान** वायु हृदय, कण्ठ, तालु, मूर्धा तथा भौंहों के मध्यभाग में रहता है। ऊपर की ओर गमन करने से वह **उदान** है। **व्यान** वायु त्वचा में रहता है। शरीर में व्याप्त होने से वह **व्यान** है।

ग्यारह इन्द्रियाँ, बुद्धि तथा अहङ्कार- ये तेरह प्रकार के **करण** हैं।

कारकविशेष को **करण** कहते हैं। वे आहरण, धारण तथा प्रकाश करने वाले हैं। इनके आहार्य, धार्य और प्रकाश्य ये दस प्रकार के विषय होते हैं। इनमें वाक् आदि **कर्मेन्द्रियाँ** अपने-अपने व्यापार या कार्य से अपने-अपने विषयों का आहरण करती हैं। **बुद्धि, अहङ्कार** और **मन** अपने-अपने प्राण आदि व्यापारों के द्वारा उनको धारण करते हैं एवं **ज्ञानेन्द्रियाँ** शब्द, स्पर्श आदि को प्रकाशित करती हैं। बाह्यकरण वर्तमान तथा अन्तःकरण तीनों काल से सम्बद्ध हैं।

तन्मात्राणि–तामसादहङ्कारादुत्पन्नानि पञ्चतन्मात्राणि शब्दादीनि तान्यविशेषा इत्युच्यन्ते[102] । शब्दतन्मात्रं स्पर्शतन्मात्रं रूपतन्मात्रं रसतन्मात्रं गन्धतन्मात्रम्,[103] देवानामेते सुखलक्षणा विषया दुःखमोहरहिताः[104] ।

महाभूतानि–शब्दादिभ्यः पञ्चभ्य आकाशादीनि पञ्चमहाभूतानि पूर्वपूर्वानुप्रवेशादेकद्वित्रिचतुष्पञ्चगुणान्युत्पद्यन्ते[105] । गन्धतन्मात्रात् पृथिवी, रसतन्मात्रादापः, रूपतन्मात्रात् तेजः, स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, शब्दतन्मात्रादा-काशम्, इत्येवमुत्पन्नान्येतानि महाभूतान्येते विशेषाः मानुषाणाम्[106] ।

आकाशादिषु स्थूलेषु सत्त्वप्रधानतया केचिच्छान्ताः सुखाः प्रकाशा लघवः, केचिद्रजःप्रधानतया घोरा दुःखा अनवस्थिताः, केचित्तमः-प्रधानतया मूढा विषण्णा गुरवः[107] ।

सूक्ष्मा मातापितृजाः सह प्रभूतैस्त्रिधा विशेषाः स्युः।
सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजा निवर्तन्ते[108] ॥

तन्मात्राः–तामस अहङ्कार से आविर्भूत शब्द आदि पाँच तन्मात्रायें **अविशेष** हैं। ये **शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र** एवं **गन्धतन्मात्र** हैं। दुःख और मोह से रहित ये विषय देवों को सुख प्रदान करते हैं।

महाभूत :–शब्द आदि पाँच तन्मात्राओं से आकाश आदि पाँच महाभूत अपने से पहले महाभूत के गुणों से सम्बद्ध होने के कारण क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच गुण वाले अभिव्यक्त होते हैं। इनमें गन्धतन्मात्रा से **पृथिवी**, रसतन्मात्रा से **जल**, रूपतन्मात्रा से **तेज**, स्पर्शतन्मात्रा से **वायु** तथा शब्दतन्मात्रा से **आकाश** आविर्भूत होते हैं। इनसे मानवशरीर का निर्माण होने के कारण ये विशेष हैं।

इन आकाश आदि स्थूल विषयों में कुछ **सत्त्व प्रधान** होने के कारण शान्त, सुखात्मक, प्रकाशक एवं लघु ; कुछ **रजस् प्रधान** होने के कारण घोर, दु:खात्मक और चञ्चल तथा कुछ **तमस् प्रधान** होने के कारण मोहात्मक, विषादरूप और गुरु होते हैं। विशेष तीन हैं– सूक्ष्म शरीर, माता और पिता से उत्पन्न स्थूल शरीर और पाँच महाभूत। इनमें सूक्ष्म शरीर नित्य होते हैं, किन्तु माता–पिता से उत्पन्न स्थूल शरीर अनित्य होते हैं।

सूक्ष्मा सूक्ष्मदेहाः परिकल्पिताः, मातापितृजाः षाट्कौशिकाः। तत्र मातृतो लोमलोहितमांसानि, पितृतस्तु स्नाय्वस्थिमज्जान इति षट् कोशाः[109] । **महाभूतवर्गे च घटादीनां निवेश इति**[110] ।

लिङ्गं प्रलयकाले प्रधाने लयं गच्छति इति लिङ्गम्[111] । **लिङ्गनाज्ज्ञापनाद् बुद्ध्यादयो लिङ्गम्**[112] ।

> **पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्।**
> **संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम्**[113] ॥

माता–पिता से उत्पन्न छह कोशों से युक्त **स्थूल शरीर** है। इसमें केश, रक्त और मांस **माता** से, तथा नाड़ियाँ हड्डियाँ और मज्जा **पिता** से – इस प्रकार ये **षाट्कौशिक** शरीर विकसित होते हैं। महाभूतों की कोटि में घट आदि का समावेश है।

प्रलय काल में जो प्रधान में लीन होता है वह **लिङ्ग** है। प्रधान के ज्ञापक या अनुमापक हेतु होने से बुद्धि, अहङ्कार एवं ग्यारह इन्द्रियाँ **लिङ्ग*** हैं।

* **लिङ्गं त्रयोदशकरणसमुदायः**। कि. 41

तेरह करणों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मनस्, अहङ्कार और बुद्धि) को लिङ्ग कहते हैं। यह 'लिङ्गनाद् ज्ञापनाद् लिङ्गमिति' अर्थात् जिसके द्वारा पुरुष का ज्ञान होता है– इस व्युत्पत्ति पर आधारित है। उपर्युक्त व्याख्या 'किरणावली' टीका के आधार पर दी गयी है। यहाँ 'लिङ्गशरीर' और 'लिङ्ग' मे स्पष्ट अन्तर है। 'लिङ्ग' अर्थात् तेरह करण, उनमें में पाँच तन्मात्राओं के जुड़ जाने से अठारह अवयवों से युक्त 'लिङ्गशरीर' है। साङ्ख्यकारिका में 'लिङ्ग' को ही 'लिङ्गशरीर' अर्थात् अठारह अवयवों से युक्त माना गया है।

सृष्टि के आरम्भ में **पूर्वोत्पन्न***, **असक्त#**, **नियत$**, महत् तत्त्व से

लेकर सूक्ष्म तन्मात्रा पर्यन्त, भोगरहित, धर्म, अधर्म आदि भावों से युक्त लिङ्ग (सूक्ष्म) शरीर संसरण या गमनागमन करता रहता है।

* **प्रधानेनादिसर्गे प्रतिपुरुषमेकैकमुत्पादितम्।** सां.त.कौ. 40

'पूर्वोत्पन्न' से तात्पर्य है–सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति के द्वारा प्रत्येक पुरुष के लिए पृथक्–पृथक् उत्पादित।

असक्तम् अव्याहतं शिलामप्यनुप्रविशति। सां.त.कौ. 40

'असक्त' से तात्पर्य है– बाधारहित गति अर्थात् जहाँ शिला में भी प्रवेश सम्भव हो जाय।

$ **आ चादिसर्गादा च महाप्रलयादवतिष्ठते।** सां.त.कौ. 40

'नियत' से तात्पर्य है–सृष्टि से लेकर महाप्रलय पर्यन्त निश्चित रूप से रहना।

पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि, पञ्चतन्मात्राणि, मनोबुद्धिरहङ्कार, एवमष्टादश महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम्[114]। एषां समुदायः सूक्ष्मं शरीरम्[115]। शान्तघोरमूढैरिन्द्रियैरन्वितत्वाद्विशेषः[116]। षाट्कौशिकं शरीरं भोगायतनं विना सूक्ष्मं शरीरं निरुपभोगं तस्मात् संसरति[117]। धर्माधर्मज्ञानाज्ञानवैराग्यावैराग्यैश्वर्यानैश्वर्याणि भावाः, तदन्विता बुद्धिः, तदन्वितञ्च सूक्ष्मं शरीरमिति तदपि भावैरधिवासितम्। यथा सुरभिचम्पककुसुमसम्पर्काद्वस्त्रं तदामोदवासितं भवति। तस्माद्भावैरेवा-धिवासितत्वात्संसरति[118]।

> **चित्रं यथाश्रयमृते स्थाणवादिभ्यो विना यथाच्छाया।**
> **तद्वद्विना विशेषैर्न तिष्ठति निराश्रयं लिङ्गम्॥**
> **पुरुषार्थहेतुकमिदं निमित्तनैमित्तिकप्रसङ्गे**
> **प्रकृतेर्विभुत्वयोगान्नटवद् व्यवतिष्ठते लिङ्गम्[119]॥**

पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें, मन, बुद्धि, अहङ्कार-अठारह का यह समूह **सूक्ष्म शरीर** है। शान्त, घोर, मूढ़रूप इन्द्रियों से युक्त होने के कारण यह **विशेष** है। सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीर के विना धर्म, अधर्म आदि के भोग में असमर्थ रहने से गमन करता रहता है। धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य ये **भाव** हैं। बुद्धि इनसे युक्त होती है और बुद्धि से युक्त सूक्ष्मशरीर रहता है। इसलिये सूक्ष्मशरीर भी बुद्धि के द्वारा धर्म, अधर्म आदि भावों से उसी प्रकार युक्त होता है जैसे सुगन्धित

चम्पक पुष्प के सम्पर्क से वस्त्र सुगन्धित होता है। इसलिये धर्म, अधर्म आदि से युक्त होने के कारण ही सूक्ष्म शरीर संसरण करता है।

जैसे आधार के विना चित्र और स्तम्भ के विना छाया नहीं रहती, उसी प्रकार आश्रय रहित सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीर के विना नहीं रह सकता। पुरुषार्थ का हेतुरूप यह **सूक्ष्मशरीर** धर्म, अधर्म आदि निमित्त और उसके स्थूलशरीररूप नैमित्तिक से सम्बद्ध होने के कारण प्रकृति की विभुत्व शक्ति के संयोग से नर्तक के समान आचरण करता रहता है।

अव्यक्तम्

कार्यं हि कारणगुणात्मकं दृष्टं यथा तन्त्वादिगुणात्मकं पटादिकं तथा महदादिलक्षणेनापि कार्येण सुखदुःखमोहरूपेण स्वकारणगत-सुखदुःखमोहात्मना भवितव्यं, तथा च तत्कारणं सुखदुःखमोहात्मकं प्रधानम् अव्यक्तम्[120]। प्रकरोतीति प्रकृतिः[121]। प्रकरणात् प्रकृतिः प्रसवधर्मकत्वात्सा प्रकृतिः। न विकृतिरविकृतिरन्यस्मादनुत्पत्तेः। कारणमेव सा न कार्यमित्यर्थः। अनुत्पन्नत्वादुत्पादकत्वाच्च[122]।

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः[123]॥

प्रधानं सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था[124]। प्रकर्षेण धीयते स्थाप्यते अत्राखिलमिति प्रधानम्[125]। व्यक्तोत्पत्तिकारणम्[126]। गुणानां सत्त्वरजस्त-मसामङ्गाङ्गिभावगमनाद्विशेषगृहीतिः[127]।

अव्यक्त

व्यक्तरूप सुख-दुःख-मोहात्मक महत् आदि कार्यों का सुख-दुःख-मोहात्मक प्रधान कारण **अव्यक्त** है। जो प्रकृष्ट रूप से कार्य करती है, वह **प्रकृति** है। प्रकृष्ट करण होने के कारण वह **प्रकृति** है। सृष्टि के आविर्भाव का कारण होने से वह **प्रकृति** है। अन्य किसी से आविर्भूत न होने से वह **अविकृति** है। मूल प्रकृति किसी का विकार अर्थात् कार्य नहीं है, केवल **कारण** है। महत् आदि **सात*** तत्त्व कारण और कार्य दोनो हैं। **सोलह#** तत्त्वों का समुदाय केवल कार्य है। पुरुष न कारण और न कार्य है। सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था **प्रधान** है। दूसरे शब्दों में प्रकृष्टरूप

से जहाँ सब कुछ धारण किया जाता है वह **प्रधान** है, जो व्यक्त की उत्पत्ति का कारण है। सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन गुणों का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव प्राप्त होने के कारण परिणाम का ग्रहण होता है।

* **महत्तत्वम् अहङ्कारः शब्दः स्पर्शः रूपं रसो गन्धश्चेति।** कि. 3

महत्, अहङ्कार, शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र, एवं गन्धतन्मात्र ये सात तत्त्व हैं।

पञ्चमहाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि चेति षोडशको गणः। सां.त.कौ. 3

मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं पाँच महाभूत - इन सोलह तत्त्वों का समुदाय केवल कार्य है।

जहद्धर्मान्तरं पूर्वमुपादत्ते यदा परम्।
तत्त्वादप्रच्युतो धर्मी परिणामः स उच्यते[128] ॥

यदा त्वङ्गभावमगच्छन्तो निर्लिखितविशेषा व्यवतिष्ठन्ते तदा अव्यक्तम् इत्युच्यन्ते[129] **। गुणानामेवावस्थान्तरापेक्षः कार्यकारणभावः। सूक्ष्माणां मूर्तिलाभः कार्यम्। निवृत्तिविशेषाणामविभागात्मनावस्थानं कारणमित्ययं सिद्धान्तः**[130] ।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्[131] ॥

अव्यक्तम् अहेतुमत् अनुत्पन्नत्वात्। नित्यम् अकारणवत्त्वात्। व्यापी सर्वगतत्वात् आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं पुरुषवत् व्याप्य प्रधानमवस्थितम्। निष्क्रियं सर्वव्यापकत्वात्। एकं सर्वकारणत्वात्। अनाश्रितं प्रभविष्णुत्वात्। अलिङ्गम् अनुत्पत्तिकत्वात्। निरवयवम् अमूर्त्तत्वात्। स्वतन्त्रं सर्वोत्पत्तिकारणत्वात्[132] ।

जो धर्मी एक धर्म का परित्याग करता हुआ अन्य धर्म को प्राप्त करे तथा अपने स्वरूप से बना रहे, वह **परिणाम** है। जब उपर्युक्त तीन गुण परस्पर अङ्गाङ्गिभाव को प्राप्त नहीं करते तब अपने-अपने स्वरूप में स्थित होकर **अव्यक्त** भाव को प्राप्त करते हैं। कार्य-कारणभाव वह है जहाँ साम्यावस्था में स्थित गुणों को विषमावस्था की अपेक्षा होती है। सूक्ष्म का स्थूलरूप धारण करना **कार्य** है। विशेष से निवृत्ति एवं अविभाग में अवस्थिति **कारण** है।

व्यक्त सकारण, आविर्भूत होने वाला, विनाशी, एकदेशीय, क्रियावान्, अनेक, अपने कारण में आश्रित अतएव परतन्त्र, अवयवयुक्त एवं प्रधान के ज्ञान में हेतु है, **अव्यक्त** इसके विपरीत है। वह कार्यरूप नहीं होने से कारण रहित है, फलतः **नित्य है**; सूक्ष्म से स्थूल पर्यन्त सभी में विद्यमान रहने के कारण पुरुष के समान व्यापक है, अतः **निष्क्रिय** है; सभी का कारण होने से एक है; सभी का आश्रय होने के कारण स्वयं **अनाश्रित** है; आविर्भाव से रहित होने के कारण **अलिङ्ग** है; अमूर्त (आकार रहित) होने के कारण **निरवयव** है तथा सभी की अभिव्यक्ति का कारण होने से **स्वतन्त्र** है।

> **त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।**
> **व्यक्तं तथा प्रधानम्**[133] ॥
> **प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः।**
> **अन्योऽन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः**[134] ॥

यो हि कश्चित् क्वचित् प्रीतिं लभते तत्र आर्जवमार्दवसत्यशौच-ह्रीबुद्धिक्षमानुकम्पाज्ञानादि च, तत् सत्त्वं प्रत्येतव्यम्[135] **। यो हि कश्चित् कदाचित् क्वचिद् अप्रीतिमुपलभते तत्र द्वेषद्रोहमत्सरनिन्दास्तम्भो-त्कण्ठानिकृतिवञ्चनाबन्धवधच्छेदनानि च तद् रजः प्रत्येतव्यम्**[136] **। यो हि कश्चित् कदाचित् क्वचित् मोहमुपलभते तत्र अज्ञान-मदालस्यभयदैन्याकर्मण्यतानास्तिक्यविषादस्वप्नादि च, तत् तमः प्रत्येतव्यम्**[137] **। यथा तैलाग्निवर्तिकासंयोगात् परस्परविरुद्धा अपि पदार्थाः संहत्य एकमर्थं प्रकाशरूपं निष्पादयन्त्येवं गुणा अपि परस्परविरुद्धाः संहत्य पुरुषार्थं कुर्वन्ति**[138] **।**

व्यक्त तथा **अव्यक्त** दोनों ही त्रिगुणात्मक, तीनों गुणों से अपृथक् या अभिन्न, विषय, सर्वसाधारण, जड़ तथा परिणामी हैं।

प्रकृति के तीन गुणों का स्वभाव इस प्रकार है- **सत्त्वगुण** सुखात्मक तथा प्रकाशात्मक, **रजोगुण** दुःखात्मक तथा प्रवर्तनात्मक और **तमोगुण** मोहात्मक तथा अवरोधात्मक है। ये परस्पर एक दूसरे को अभिभूत करने वाले, परस्पर एक दूसरे का आश्रय बनने वाले, परस्पर मिलकर सर्वजनक स्वभाव वाले एवं परस्पर संयोग स्वभाव वाले हैं। जहाँ भी कोई प्रीति प्राप्त करता है वहाँ सरलता, कोमलता, सत्यता, पवित्रता, लज्जा, बुद्धि, क्षमा,

दया, ज्ञान आदि को **सत्त्वगुण** जानना चाहिये। जहाँ भी कोई अप्रीति करता है, वहाँ द्वेष, द्रोह, ईर्ष्या, निन्दा, स्तब्धता, उत्कण्ठा, शठता, वञ्चकता, बन्धन, वध, शरीर के अवयव की क्षति आदि को **रजोगुण** समझना चाहिये। जो कोई भी कहीं मोह को प्राप्त होता है वहाँ अज्ञान, आलस्य, भय, दीनता, अकर्मण्यता, नास्तिकता, विषाद, स्वप्न आदि को **तमोगुण** समझना चाहिये। जैसे तेल, आग और वत्ती, परस्पर विरुद्ध पदार्थ होते हुए भी आपस में मिलकर एक प्रकाशरूप कार्य का सम्पादन करते हैं, उसी प्रकार ये गुण भी परस्पर विरुद्ध होते हुए मिलकर पुरुषार्थ को सम्पन्न करते हैं।

यदा सत्त्वमुत्कटं भवति तदा रजस्तमसी अभिभूय स्वगुणेन प्रीतिप्रकाशात्मकेनावतिष्ठते यदा रजस्तदा सत्त्वतमसी अप्रीतिप्रवृत्त्यात्मना धर्मेण, यदा तमस्तदा सत्त्वरजसी विषादस्थित्यात्मकेन इति[139]।

सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥
अविवेक्यादेः सिद्धिस्त्रैगुण्यात्तद्विपर्ययाभावात्।
कारणगुणात्मकत्वात्कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम्॥
भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभागाद्वैश्वरूप्यस्य ॥
कारणमस्त्यव्यक्तं प्रवर्तते त्रिगुणतः समुदयाच्च।
परिणामतः सलिलवत् प्रतिप्रतिगुणाश्रयविशेषात्[140] ॥

ज्ञः

चेतनाशक्तिरूपत्वाच्चित्रं गुणवृत्तं जानातीति ज्ञः[141]। **ज्ञः पुरुषः**[142] । **पुरि लिङ्गे शेत इति पुरुषः**[143] ।

जब **सत्त्वगुण** प्राधान होता है तो वह रजोगुण तथा तमोगुण को दबाकर अपने गुण से सुख एवं प्रकाश रूप में स्थित रहता है। वैसे ही **रजोगुण** भी अपनी प्रधानता की स्थिति में सत्त्वगुण एवं तमोगुण को दबाकर दुःख एवं प्रवृत्ति रूप से रहता है। इसी प्रकार जब **तमोगुण** की प्रधानता होती है तब वह अन्य दोनों गुणों को दबाकर मोह एवं अवरोधरूप से स्थित रहता है। **सत्त्व** हल्का एवं प्रकाशक, **रजस्** प्रवृत्तिशील एवं उत्तेजक तथा **तमस्** भारी एवं अवरोधक है। एक ही प्रयोजन की सिद्धि के लिए तीनों दीपक के समान मिलकर **कार्य** करते हैं।

त्रिगुणात्मक होने के कारण व्यक्त के **अविवेकित्व** आदि की सिद्धि होती है। जहाँ अविवेकित्व आदि धर्मों का अभाव है वहाँ त्रैगुण्य का भी अभाव है, जैसे-पुरुष। कार्य सदा कारणात्मक होता है। इसी से त्रिगुणात्मक अव्यक्त की भी सिद्धि होती है। महत् आदि कार्यों के परिमित होने, कारण के सदृश होने, कारणशक्ति से आविर्भूत होने, कारण से ही आविर्भूत एवं उसी में तीरोभूत होने से सब का एक कारण **अव्यक्त** है, जो अपने तीनों गुणों के परस्पर मिलित रूप से जल के समान प्रत्येक गुण के आश्रयविशेष के आधार पर परिणमित होकर प्रवृत्त होता है।

ज्ञ

जो विविध प्रकार की गुणवृत्ति को चेतनाशक्ति के द्वारा जानता है, वह **ज्ञ** है तथा ज्ञ ही **पुरुष** है। जो **पुर्** अर्थात् लिङ्ग शरीर में शयन करता है वह **पुरुष** है।

पुरुषस्तु सुखाद्यननुसङ्गी चेतनः[144]**। चेतनो हि द्रष्टा भवति नाचेतनः, साक्षी च दर्शितविषयो भवति। यस्मै प्रदर्श्यते विषयः स साक्षी,**[145] **यथा हि लोकेऽर्थिप्रत्यर्थिनौ विवादविषयं साक्षिणे दर्शयत एवं प्रकृतिरपि स्वचरितं विषयं पुरुषाय दर्शयतीति पुरुषः साक्षी**[146] **।**

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावाद् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥
जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च।
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥
तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वमकर्तृभावश्च[147] **॥**

पुरुष सुख, दुःख आदि से अनासक्त **चेतन** है। चेतन पुरुष देखता है, जड़ प्रकृति नहीं। विषय को देखनेवाला **साक्षी** होता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति जिसके दर्शन के लिये विषय को प्रस्तुत करती है वह **साक्षी** है। जिस प्रकार लोकव्यवहार में वादी और प्रतिवादी के विवादविषय को तटस्थ साक्षी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, उसी प्रकार प्रकृति भी अपने द्वारा प्राप्त विषय को पुरुष के लिये प्रस्तुत करती है। अतः पुरुष **साक्षी** है।

सभी सङ्घातों के दूसरे के लिए होने से, तीनों गुणों से रहित होने से, सभी त्रिगुणात्मक वस्तुओं का अधिष्ठाता होने से, सभी त्रिगुणात्मक विषयों का भोक्ता होने से एवं कैवल्य के लिए प्रवृत्त होने से पुरुष की **सत्ता** सिद्ध होती है। जन्म, मरण तथा तेरह करणों के नियमित होने से, करणों के पृथक्-पृथक् प्रवृत्त होने से तथा तीनों गुणों के परिणाम भेद से पुरुष की **अनेकता** सिद्ध होती है। पूर्वोक्त (व्यक्त और अव्यक्त) के विपर्यय से पुरुष का साक्षित्व, **कैवल्य*, माध्यस्थ्य#, द्रष्टृत्व$** एवं **अकर्तृत्व+** सिद्ध होता है।

* **आत्यन्तिको दुःखत्रयाभावः कैवल्यम्।** सां.त.कौ. 19

आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक दुःखों से हमेशा के लिये निवृत्ति कैवल्य है।

\# **माध्यस्थ्यं मध्यस्थभावः पुरुषोऽप्येषु गुणेषु वर्तमानेषु न प्रवर्तते।**

गौ. पा. भा. 19

माध्यस्थं ताटस्थ्येन वर्तमानत्वं, सुखादिशून्यत्वेन रागद्वेषराहित्यमिति यावत्। सा. बो. 19

सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुणों से रहित होने के कारण पुरुष का तीनों गुणों से उत्पन्न सुख, दुःख एवं मोह में तटस्थ भाव माध्यस्थ्य है।

$ **न चाचेतनो विषयो वा शक्यो विषयं दर्शयितुम् इति चैतन्यादविषयत्वाच्च भवति साक्षी। अतएव द्रष्टापि भवति।** सां.त.कौ. 19

जो स्वभाव से ही अचेतन अथवा विषय है उसके लिये विषय प्रदर्शन अपेक्षित नहीं होता। चेतन ही अविषय होने के कारण साक्षी होता है तथा चेतन होने के कारण द्रष्टा भी होता है।

\+ **विवेकत्वादप्रसवधर्मित्वाच्चाकर्तेति सिद्धम्।** सां.त.कौ. 19

विवेकशीलता और अप्रसवधर्मिता से युक्त होने के कारण पुरुष अकर्ता है।

षष्टितन्त्रे षष्टिसङ्ख्याकाः पदार्थाः[148] **।**

प्रधानास्तित्वमेकत्वमर्थवत्त्वमथान्यता।
पारार्थ्यं च तथानैक्यं वियोगो योग एव च॥
शेषवृत्तिरकर्तृत्वं मौलिकार्थाः स्मृता दश।
विपर्ययः पञ्चविधस्तथोक्ता नव तुष्टयः॥
करणानामसामर्थ्यमष्टाविंशतिधा मतम्।
इति षष्टिः पदार्थानामष्टाभिः सह सिद्धिभिः[149] **॥**

सेयं षष्टिपदार्थी कथिता[150]। एकत्वमर्थवत्त्वं, पारार्थ्यं च प्रधानमधिकृत्योक्तम्, अन्यत्वमकर्तृत्वं बहुत्वं चेति पुरुषमधिकृत्य, अस्तित्वं वियोगो योगश्चेत्युभयमधिकृत्य, स्थितिः स्थूलसूक्ष्ममधिकृत्य[151]।

साङ्ख्यशास्त्र के षष्टितन्त्र में साठ तत्त्व :- (i) प्रधान का अस्तित्व, (ii) प्रधान का एक होना, (iii) पुरुष के लिये प्रधान की सार्थकता, (iv) पुरुष की प्रधान से भिन्नता, (v) प्रधान का पुरुष के लिये होना, (vi) पुरुष का अनेक होना, (vii) कैवल्य की अवस्था में प्रकृति और पुरुष का विवेक, (viii) कैवल्य से पूर्व प्रकृति और पुरुष का संयोग, (ix) स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व तथा (x) पुरुष में कर्तापन का अभाव- ये दस मौलिक तत्त्व हैं। बुद्धि के पाँच विपर्यय, नौ तुष्टियाँ, अट्ठाईस अशक्तियाँ तथा आठ सिद्धियाँ- ये पचास तत्त्व हैं। कुल मिलाकर साङ्ख्य में साठ तत्त्वों का परिगणन किया गया है। उपर्युक्त दस मौलिक तत्त्वों में एकत्व, अर्थवत्त्व, पारार्थ्य- **प्रधान के लिये**; अन्यत्व, अकर्तृत्व, बहुत्व- **पुरुष के लिये**; अस्तित्व, वियोग, योग **प्रकृति और पुरुष दोनों के लिये** तथा वृत्ति **स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों के लिये** कहे गये हैं।

सन्दर्भ

1. गौ. पा. भा. 2
2. सां.का. 21.22
3. गौ. पा. भा. 22
4. सां.का. 23
5. सां.त.कौ. 23
6. गौ. पा. भा. 23
7. सां.का. 23
8. सां.त.कौ. 23
9. गौ. पा. भा. 23
10. सां.त.कौ. 23
11. गौ. पा. भा. 23
12. सां.त.कौ. 23
13. वही
14. गौ. पा. भा. 23

15. सां.का. 43
16. मा. वृ. 43
17. वही
18. वही
19. वही
20. गौ. पा. भा. 43
21. सां.त.कौ. 46
22. यु. दी. 24
23. सां.का. 46
24. सां.त.कौ. 46
25. यु. दी. 46
26. गौ. पा. भा. 46.
27 मा. वृ. 46.
28. गौ. पा. भा. 46
29. सां.त.कौ. 46
30. सां.का. 47
31. सां.त.कौ. 47
32. सां.का. 48
33. सां.त.कौ. 48
34. वही
35. वही
36. वही
37. वही
38. सां.त.कौ. 48
39. सां.का. 49
40. सां.त.कौ. 49
41. वही
42. सां.का. 50
43. यु. दी. 50
44. सां.त.कौ. 50
45. वही
46. वही
47. वही

48. वही
49. वही
50. गौ. पा. भा. 50
51. सां.का. 51
52. सां.त.कौ. 51
53. वही
54. वही
55. वही
56. वही
57. वही
58. वही
59. मा. वृ. 51
60. वही
61. सां.त.कौ. 51
62. सां.का. 37
63. सां.त.कौ. 37
64. सां.का. 24
65. सां.त.कौ. 24
66. यु. दी. 24
67. सां.त.कौ. 24
68. सां.का. 24
69. सां.का. 25
70. सां.त.कौ. 25
71. वही
72. वही
73. वही
74. मा. वृ. 26
75. सां.त.कौ. 26
76. यु. दी. 26
77. सां.का. 26
78. सां.त.कौ. 26
79. गौ. पा. भा. 26
80. सां.का. 26

81. गौ. पा. भा. 26
82. मा. वृ. 26
83. सां.का. 27
84. सां.त.कौ. 27
85. वही 33
86. वही
87. सां.का. 29
88. सां.त.कौ. 29
89. वही
90. सां.त.कौ. 29
91. मा. वृ. 29
92. सां.त.कौ. 29
93. मा. वृ. 29
94 सां.त.कौ. 29
95. मा. वृ. 29
96. सां.त.कौ. 29
97. मा. वृ. 29
98. सां.त.कौ. 32
99 सां.का. 32
100. सां.त.कौ. 32
101. सां.का. 33
102. मा. वृ. 38
103 गौ. पा. भा. 38
104. वही
105. मा. वृ. 38
106. गौ. पा. भा. 38
107. सां.त.कौ. 38
108. सां.का. 39
109. सां.त.कौ. 39
110. वही
111. मा. वृ. 40
112. सां.त.कौ. 41
113. सां.का. 40

114. मा. वृ. 40
115. सां.त.कौ. 40
116. वही
117. वही
118. वही
119. सां.का. 41-42
120 सां.त.कौ. 14
121. वही 3
122. मा. वृ. 3
123. सां.का. 3
124. सां.त.कौ. 3
125. मा. वृ. 15
126. मा. वृ. 2
127. यु. दी. 2
128. यु. दी. 16
129. वही 2
130. यु. दी. 3
131. सां.का. 10
132. मा. वृ. 10
133. सां.का. 11
134. वही 12
135. मा. वृ. 12
136. वही 12
137. वही 12
138. वही 13
139. गौ. पा. भा. 12
140. सां.का. 13-16
141. यु. दी. 2
142. गौ. पा. भा. 2
143. सां.त.कौ. 55
144. वही 5
145. वही 19
146. वही 19

147. सां.का. 17-19

148. स्वा. भा. 72

149. सां.त.कौ. 72

150. वही

151. वही

द्वितीय अध्याय
प्रमाणमीमांसा

प्रमीयतेऽनेनेति निर्वचनात् प्रमां प्रति करणत्वमवगम्यते। तच्चासन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः[1]। या चित्तवृत्तिः सा प्रमा[2]। बोधश्च पौरुषेयः फलं प्रमा, तत्साधनं प्रमाणमिति[3]। सा मुख्या प्रमेत्यर्थः[4]।

साङ्ख्यनये कश्चिदर्थः प्रमाणमेव, यथा चक्षुरादिः, 'अयं घटः' इति बौद्धप्रमाया जनकत्वात्। कश्चित् प्रमाप्रमाणोभयरूपः, यथा चित्तवृत्तिः। एषा हि चक्षुरादिजन्यत्वेन प्रमा इति पौरुषेयबोधं पुरुषनिष्ठज्ञानरूपफलप्रमां प्रति करणत्वेन च प्रमाणम् इति व्यवह्रियते। कश्चित् प्रमैव, यथा पौरुषेयबोधः। घटमहं जानामि इति पुरुषनिष्ठबोधस्य फलरूपत्वेन कस्यापि करणत्वाभावात्। कश्चित् प्रमातैव, यथा बुद्धिप्रतिबिम्बितं चैतन्यम्, बुद्धिप्रतिबिम्बितचेतनस्य प्रमाया आश्रयत्वात्। कश्चित् साक्षी एव, यथा बुद्धिवृत्त्युपहितचितिः। बुद्धिवृत्त्युपहित-शुद्धचेतनस्य साक्षिमात्रत्वादिति[5]।

प्रमेयं प्रधानं बुद्धिरहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि पुरुष इति, एतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि[6]।

प्रमाणमीमांसा

जिसके द्वारा यथार्थज्ञान अर्थात् प्रमा की प्राप्ति होती है, वह **प्रमाण** है। इस व्युत्पत्ति के द्वारा यह ज्ञात होता है कि **प्रमाण** यथार्थ ज्ञान का करण अर्थात् **मुख्यसाधन** है। वह प्रमाण सन्देहरहित, सत्य तथा पहले से अज्ञात विषय से सम्बद्ध **चित्त** का व्यापार है। यही **गौणप्रमा** है। इस चित्त के व्यापार से पुरुष में उत्पन्न होने वाला बोध **प्रमा** है। यही **मुख्यप्रमा** है तथा ज्ञानप्रक्रिया का **फल** है। इस मुख्यप्रमा का साधन ही प्रमाणभूत गौणप्रमा है।

साङ्ख्यशास्त्र में कोई **अर्थ** केवल प्रमाण है, जैसे कि चक्षु आदि। **यह घड़ा है** इस प्रकार का चित्तव्यापाररूप प्रमा का जनक होने के कारण **चक्षु** आदि प्रमाण है। कोई प्रमा एवं प्रमाण दोनों है, जैसे **चित्तव्यापार**। यह चक्षु आदि से उत्पन्न **गौण प्रमा** है जो पुरुष में उत्पन्न होने वाले ज्ञान के प्रति करण होने से **प्रमाण** के रूप में व्यवहृत होता है। कोई केवल प्रमा है, जैसे पुरुष में उत्पन्न होने वाला **ज्ञान**। **मैं घट को जानता हूँ** यह पुरुष में उत्पन्न होने वाला बोध किसी का भी करण नहीं है, केवल प्रमा है। बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य प्रमा का आश्रय होने के कारण केवल **प्रमाता** है। बुद्धि की वृत्ति से उपहित चैतन्य केवल **साक्षी** है। साङ्ख्य में प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा पुरुष ये सभी पच्चीस तत्त्व **प्रमेय** हैं।

विसिन्वन्ति विषयिणमनुबध्नन्ति स्वेन रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्तीति यावत्, विषयाः पृथिव्यादयः सुखादयश्च । अस्मदादीनामविषयास्तन्मात्रलक्षणा योगिनामूर्ध्वस्त्रोतसां च विषयाः[7] ।

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि[8] ॥

एतच्च लौकिकप्रमाणाभिप्रायं, लोकव्युत्पादनार्थत्वाच्छास्त्रस्य, तस्यैवात्राधिकारात्। आर्षं तु विज्ञानं योगिनामूर्ध्वस्त्रोतसां, न लोकव्युत्पादनायालमिति सदपि नाभिहितम्, अनधिकारात्[9] ।

जो विषयी अर्थात् बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपने आकार से आकारित कर उसे उसी रूप में प्रस्तुत कर देते हैं, वे **विषय** हैं।

पृथिवी* आदि तथा **सुख** आदि विषय हैं। हमारे ज्ञान के विषय न बनने वाले सूक्ष्म तन्मात्रा आदि भी ऊर्ध्वस्रोतस् योगियों के विषय हैं।

* पृथिवी, जल, तेजस्, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, उपस्थ, पायु, पाद, पाणि, वाक्, नासिका, जिह्वा, चक्षुस्, त्वचा, कर्ण, मनस्, अहङ्कार, बुद्धि, प्रकृति तथा पुरुष ये पच्चीस तत्त्व तथा सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, सङ्कल्प आदि विषय हैं। लेखक

साङ्ख्यशास्त्र में तीन प्रमाण हैं–दृष्ट, अनुमान तथा आप्तवचन। इन्हीं प्रमाणों में अन्य सभी प्रमाणों का समावेश है। प्रमाण से ही **प्रमेय** की सिद्धि

होती है। सामान्य लोगों के ज्ञान के लिए प्रस्तुत शास्त्र केवल लौकिक प्रमाण का निरूपण करता है, क्योंकि सामान्य लोगों की इन्हीं तीन लौकिक प्रमाणों में गति होती है। **ऊर्ध्वस्रोतस्*** योगियों का **आर्ष$** प्रमाण साधारण जनों के ज्ञान में सहायक नहीं है। आर्षविज्ञान की सत्ता होने पर भी उसका निरूपण नहीं किया गया है क्योंकि उसमें केवल ऊर्ध्वस्रोतस् योगियों की गति सम्भव है।

* **ऊर्ध्वं सांसारिकविषयेभ्यो व्यतिरिक्तं (स्वप्रकाशचिदात्मके) स्रोतः वृत्तिप्रवाहो येषाम्।** कृ. 4

सांसारिक विषयों के विपरीत चैतन्य में ही जिसके चित्त का व्यापार स्थिर हो वह ऊर्ध्वस्रोतस् है।

$आम्नायविधातृणामृषीणाम् अतीतानागतवर्तमानेष्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु ग्रन्थोपनिबद्धेष्वनुपनिबद्धेषु चात्ममनसोः संयोगाद् धर्मविशेषाच्च यत् प्रातिभं यथार्थनिवेदनं ज्ञानमुत्पद्यते तदार्षमित्याचक्षते। प्र. पा. भा. गु. आ.

वेदों की रचना करने वाले महर्षियों में विशेष प्रकार के पुण्य से आगम ग्रन्थों में कहे हुए या उनमें न कहे हुए भूत, भविष्य और वर्तमान में अतीन्द्रिय धर्म आदि विषयक एवं उनके स्वरूप का परिचायक जो प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे आर्ष कहते हैं।

दृष्टम्

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्[10]।

विषयं विषयं प्रति वर्तते इति प्रतिविषयम्। वृत्तिश्च सन्निकर्षः। अर्थसन्निकृष्टमिन्द्रियमित्यर्थः। तस्मिन् अध्यवसायः तदाश्रित इत्यर्थः। अध्यवसायश्च बुद्धिव्यापारो ज्ञानम्।

उपात्तविषयाणामिन्द्रियाणां वृत्तौ सत्यां बुद्धेस्तमोऽभिभवे सति यः सत्त्वसमुद्रेकः सोऽध्यवसाय इति वृत्तिरिति ज्ञानमिति चाख्यायते। इदं तावत् प्रमाणम्। अनेन यश्चेतनाशक्तेरनुग्रहस्तत्फलं प्रमाबोधः[11]।

बुद्धितत्त्वं हि प्राकृतत्वादचेतनमिति तदीयोऽध्यवसायोऽप्यचेतनः, घटादिवत्। एवं हि बुद्धितत्त्वस्य सुखादयोऽपि परिणामभेदा अचेतनाः[12]।

दृष्ट

विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय पर आधारित बुद्धिव्यापार या ज्ञान **दृष्ट प्रमाण** है। घट, पट आदि प्रत्येक विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय **प्रतिविषय** है। वृत्ति या व्यापार **सन्निकर्ष** है। बुद्धि का व्यापार या परिणामरूप ज्ञान **अध्यवसाय** है।

इस प्रकार इन्द्रियों के द्वारा घट, पट आदि विषयों के आकार को बुद्धिव्यापार से प्राप्त कर लेने पर बुद्धि में तमोगुण की कमी के साथ-साथ सत्त्वगुण की अधिकता **अध्यवसाय** है। यह अध्यवसाय **वृत्ति** अथवा **ज्ञान** है तथा यही प्रमाण है। इस अध्यवसाय रूप प्रमाण का बुद्धि में प्रतिबिम्बित पुरुष के साथ सम्बन्ध **प्रमा** है तथा यही इस ज्ञानप्रक्रिया का **फल** है।

बुद्धि तत्त्व जड़ प्रकृति का परिणाम होने के कारण अचेतन है, इसलिए उसका ज्ञानरूप व्यापार या कार्य भी घट आदि के समान अचेतन है। इसी प्रकार बुद्धि के सुख, दुःख आदि विभिन्न परिणाम या कार्य भी अचेतन हैं।

पुरुषस्तु सुखाद्यननुसङ्गी चेतनः । सोऽयं बुद्धितत्त्ववर्तिना ज्ञानसुखादिना तत्प्रतिबिम्बितस्तच्छायापत्त्या ज्ञानसुखादिमानिव भवतीति चेतनोऽनुगृह्यते। चितिच्छायापत्त्या चाचेतनापि बुद्धिस्तदध्यवसायोऽप्यचेतनश्चेतनवद् भवतीति[13] ।

आलोचितमिन्द्रियेण वस्तु 'इदम्' इति सम्मुग्धम् 'इदमेवं,' 'नैवम्' इति सम्यक्कल्पयति विशेषणविशेष्यभावेन विवेचयतीति यावत्।

यदाहुः

सम्मुग्धं वस्तुमात्रं तु प्राग्गृह्णन्त्यविकल्पितम्।
तत् सामान्यविशेषाभ्यां कल्पयन्ति मनीषिणः॥

सुख, दुःख आदि से अनासक्त पुरुष **चेतन** है। पुरुष बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता हुआ उससे **तादात्म्य*** ग्रहण कर उसमें स्थित ज्ञान, सुख आदि धर्मों से युक्त सा प्रतीत होता है तथा इसी रूप में बुद्धि के द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार चेतन पुरुष के साथ तादात्म्य प्राप्त होने के कारण अचेतन बुद्धि तथा उसका अचेतन ज्ञान भी चेतन सा प्रतीत होता है।

*साङ्ख्य में सम्बन्ध दो प्रकार के हैं- संयोगसम्बन्ध और तादात्म्यसम्बन्ध।

I. कार्यकारणभावानापन्नयोः पदार्थयोः संयोगः। स्वा.भा. 3

कार्य और कारणभाव को प्राप्त नहीं करने वाले दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है। जैसे 'दण्डधारी पुरुष' में दण्ड और पुरुष ऐसे दो पदार्थों में एक पदार्थ 'दण्ड' दूसरे पदार्थ 'पुरुष' का कारण नहीं है। साथ ही 'पुरुष' भी 'दण्ड' का कार्य नहीं है। इस प्रकार कार्य-कारण भाव को अप्राप्त 'दण्ड' और 'पुरुष' के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है।

II. कार्यकारणभावापन्नयोश्च तादात्म्यमिति। स्वा.भा. 3

कार्य और कारण भाव को प्राप्त हुए दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य है। जैसे- महत् आदि व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध है, क्योंकि अव्यक्त प्रकृति महत् आदि व्यक्त का कारण है तथा महत् आदि व्यक्त उसका कार्य है। इस प्रकार इन दोनों पदार्थों के कार्य-कारणभाव को प्राप्त किये जाने से दोनों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि संयोग सम्बन्ध भेद सम्बन्ध तथा तादात्म्य सम्बन्ध अभेद सम्बन्ध है।

यहाँ 'तच्छायापत्त्या' पद में 'तत्' पद से 'बुद्धि' तत्त्व का ग्रहण होता है। उस बुद्धि की 'छाया' का अर्थ है 'अविवेक के कारण बुद्धि और पुरुष के मध्य बन्धनरूप तादात्म्य' तथा 'आपत्त्या' का अर्थ है 'बुद्धि और पुरुष में अभेद ग्रहण करने के कारण'। कि. 5

इन्द्रिय के द्वारा वस्तु का **'यह'** इस प्रकार से अस्पष्ट ज्ञान होता है। मन के द्वारा **'यह वस्तु ऐसी है, ऐसी नहीं है'** इस प्रकार के सङ्कल्प से विशेषण-विशेष्यभावरूप ज्ञान होता है जैसा कि श्रेष्ठ आचार्यों का विचार है-

चक्षु आदि व्यापार के बाद एवं मन के व्यापार से पहले निर्विकल्पक एवं भेद से रहित वस्तु मात्र का बोध होता है। विद्वान् लोग इसी को दूसरे क्षण में सामान्य एवं विशेष के द्वारा **सविकल्पक** ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं।

तथाहि

अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं मुग्धवस्तुजम्।।
ततः परं पुनर्वस्तुधर्मैर्जात्यादिभिर्यया।।
बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता।।

(श्लोकवार्तिकम् प्रत्यक्षखण्डम् 112, 120)[14]

चतुर्विधकरणस्यासाधारणीषु वृत्तिषु क्रमाक्रमौ सप्रकारावाह[15] –

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः[16] ॥

दृष्टे यथा – यदा सन्तमसान्धकारे विद्युत्सम्पातमात्राद् व्याघ्रमभिमुख-मतिसन्निहितं पश्यति, तदा खल्वस्यालोचनसङ्कल्पाभिमानाध्यवसाया युगपदेव प्रादुर्भवन्ति, यतस्तत उत्प्लुत्य तत्स्थानादेकपदेऽपसरति।

जैसा कि स्पष्ट किया गया है–वस्तु मात्र का बाल, मूक आदि के समान इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से उत्पन्न शुद्धज्ञान या आलोचन **निर्विकल्पक** है। यह **धर्मधर्मिभाव*** रहित अर्थात् भेदरहित होता है। इस ज्ञान के अनन्तर बुद्धि के द्वारा वस्तु का **सामान्य एवं विशेष#** से युक्त ज्ञान **सविकल्पक प्रत्यक्ष** है।

* **धर्मः ध्रियते तिष्ठति वर्तते यः स धर्मः**। न. न्या. भा. प्र., पृ. 2

जो वस्तु जिसमें रहता है या जिसको धारण किया जाता है वह धर्म तथा जहाँ रहता है या जो उसे धारण करता है वह धर्मी है। साङ्ख्य दर्शन के प्रत्यक्षज्ञान की प्रक्रिया में आलोचन अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के संयोग के बाद धर्म और धर्मी का भेद रहित ज्ञान होता है जो निर्विकल्पक है। यही दूसरे क्षण में भेद सहित प्रतीत होकर विशेषण–विशेष्यभाव अर्थात् धर्मधर्मिभावरूप से सविकल्पक है।

सामान्यं नाम अनुगतो धर्मः। विशेषो नाम धर्मी। सा. बो. 27, पादटिप्पणी

सामान्य से धर्म का तथा विशेष से धर्मी का ज्ञान होता है।

दृष्ट पदार्थ के विषय में बाह्येन्द्रिय एवं तीन प्रकार के अन्तःकरणों का व्यापार कभी एक साथ कभी क्रमशः होता है तथा अदृष्ट पदार्थ के विषय में तीनों अन्तःकरणों का व्यापार दृष्ट पूर्वक होता है।

दृष्ट पदार्थ के विषय में एक साथ होने वाले व्यापारों का उदाहरण :– जब घने अन्धकार में बिजली की चमक से कोई व्यक्ति बाघ को अत्यन्त समीप में स्थित देखता है, तब उसके चक्षु के द्वारा किया गया आलोचन, मनः के द्वारा किया गया सङ्कल्प, अहङ्कार के द्वारा किया गया अभिमान तथा बुद्धि के द्वारा किया गया निश्चय एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। अतएव वह व्यक्ति तत्क्षण ही उस स्थान विशेष से हट जाता है।

क्रमशश्च – यदा मन्दालोके प्रथमं तावद्वस्तुमात्रं सम्मुग्धमालोचयति, अथ प्रणिहितमनाः कर्णान्ताकृष्टसशरशिञ्जितमण्डलीकृतकोदण्डः प्रचण्डतरः पाटच्चरोऽयम् इति निश्चिनोति, अथ च मां प्रत्येति इत्यभिमन्यते अथाध्यवस्यति – अपसरामीतः स्थानादिति। परोक्षे त्वन्तःकरणत्रयस्य बाह्येन्द्रियवर्जं वृत्तिः[17]। अन्तःकरणत्रयस्य युगपत्क्रमेण च वृत्तिर्दृष्ट-पूर्विकेति। अनुमानागमस्मृतयो हि परोक्षेऽर्थे दर्शनपूर्वाः प्रवर्तन्ते नान्यथा। यथा दृष्टे तथादृष्टेऽपीति योजना[18]।

चतुर्णां त्रयाणां वा वृत्तयो न तावत्तन्मात्राधीनाः तेषां सदातनत्वेन वृत्तीनां सदोत्पादप्रसङ्गात्, आकस्मिकत्वे तु वृत्तिसङ्करप्रसङ्गो नियमहेतोर-भावादित्यत आह[19] -

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्[20] ॥

दृष्ट पदार्थ के विषय में क्रमशः होने वाले व्यापारों का उदाहरणः- जब कोई व्यक्ति मन्द प्रकाश में वस्तु को अस्पष्ट रूप से देखता है, तब वह एकाग्र मन से विचार करता है कि यह धनुष पर बाण को चढ़ाया हुआ चोर है, पुनः यह अभिमान करता है कि वह मेरी ओर आ रहा है तथा अन्ततः यह निश्चय करता है कि यहाँ से भाग जाना उचित है।

परोक्ष या अदृष्ट के विषय में बाह्येन्द्रिय के विना ही तीनों अन्तःकरणों का व्यापार होता है। यहाँ दृष्ट ज्ञान पूर्वक तीनों अन्तःकरणों का व्यापार साथ-साथ तथा क्रमशः भी होता है। यह नियम है कि परोक्ष वस्तु का ज्ञान कराने में अनुमान, आगम तथा स्मरण दृष्टज्ञानपूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं, अन्यथा नहीं। बोध का यह क्रम दृष्ट तथा अदृष्ट में समान है।

बाह्येन्द्रिय, मन, अहङ्कार, महत् आदि चारों का और मन, अहङ्कार, महत् आदि तीनों का अपना-अपना असाधारण तथा साधारण व्यापार किसी अन्य निमित्त की अपेक्षा किये विना केवल महत् आदि करणों के अधीन नहीं होता, अपितु उसमें अन्य हेतु भी होते हैं। चारों या तीनों करणों के व्यापार इन करणों पर ही आश्रित नहीं होते, क्योंकि ऐसा होने पर इनके हमेशा अकारण रहने से इनके व्यापार भी हमेशा होते रहेगें। यदि इन व्यापारों को किसी के आश्रित न मानकर कारण रहित मानें तो किसी भी नियामक

हेतु के अभाव में इनके सङ्कर की आपत्ति उपस्थित होगी। जैसा कि कहा गया है-

ये इन्द्रियाँ परस्पर एक दूसरे के सङ्केत को समझकर अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होती हैं तथा इस प्रवृत्ति में पुरुषार्थ ही एक मात्र हेतु है, किसी और के द्वारा इनकी प्रवृत्ति सम्भव नहीं है।

अनुमानम्

तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्[21]। लिङ्गयति गमयति लीनमर्थमिति लिङ्गम्[22]। लिङ्गं व्याप्यम्, लिङ्गिव्यापकम्। शङ्कितसमारोपितोपाधिनिराकरणेन च वस्तुस्वभावप्रतिबद्धं व्याप्यम्,

अनुमान

अनुमान लिङ्ग तथा लिङ्गी के ज्ञान पूर्वक होता है। अज्ञात अर्थ का ज्ञान कराने वाला लिङ्ग है। **लिङ्ग** का अर्थ **व्याप्य** तथा **लिङ्गी** का अर्थ **व्यापक** है। सन्दिग्ध तथा निश्चित इन दोनों **उपाधियों*** के निराकरण पूर्वक जो वस्तु के स्वभाव से सम्बद्ध हो, वह **व्याप्य** है ।

* **साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः**। त. सं. हे.

जो धर्म साध्य का व्यापक तथा साधन का अव्यापक हो, वह उपाधि है। साध्य के व्यापक होने का तात्पर्य है- जहाँ-जहाँ साध्य हो, वहाँ-वहाँ नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित हो। साधन के अव्यापक होने का तात्पर्य है- जहाँ-जहाँ साधन हो, वहाँ-वहाँ सर्वत्र नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित न हो। यह उपाधि दो प्रकार का है- शङ्कित अर्थात् सन्दिग्ध तथा समारोपित अर्थात् निश्चित। I. **शङ्कित उपाधि-शङ्कितः शङ्काविषयीकृतः सन्दिग्ध इति यावत्**। कि. 5 'वह काला है, मैत्री का पुत्र होने के करण'- यहाँ 'शाक परिणाम से उत्पन्न' उपाधि है, क्योंकि 'जहाँ-जहाँ कालापन है, वहाँ-वहाँ वह कालापन शाक के परिणाम से उत्पन्न है' इस स्थल पर 'शाक परिणाम से उत्पन्न' साध्य 'कालापन' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ 'कालापन' है वहाँ-वहाँ 'शाक के परिणाम से वह कालापन उत्पन्न है' नियमपूर्वक उपस्थित होता है। लेकिन 'जहाँ-जहाँ मैत्री का पुत्र है वहाँ-वहाँ शाक के परिणाम से अवश्य ही उत्पन्न है' ऐसा नहीं है। यहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' साधन 'मैत्री के पुत्र' का अव्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ 'मैत्री का पुत्र' हो, वहाँ-वहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' नियम पूर्वक हो यह निश्चित नहीं है। इस प्रकार साध्य 'कालापन' का व्यापक

तथा साधन ''मैत्री का पुत्र' का अव्यापक होने से 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' उपाधि रूप धर्म है। यहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' शङ्कित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि जहाँ पर साधनव्यापकत्व का अथवा साध्यव्यापकत्व का अथवा दोनो का सन्देह हो, वहाँ पर हेतु में संशय होने से उपाधि सन्दिग्ध होता है। यहाँ साधन 'मैत्री का पुत्र' के प्रति 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' रूप उपाधि की अव्यापकता में सन्देह रहने से अर्थात् प्रत्यक्ष आदि से सम्बन्ध सिद्ध न होने से वह शङ्कित उपाधि है।

II.समारोपित उपाधि- समारोपितः सम्यक् वास्तविकतया आ समन्तात् रोपितः स्थापितः वास्तविकतया निश्चितः इति यावत्। कि. 5 'पर्वत धूमवाला है, आग से युक्त होने के कारण'- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधि है , क्योंकि 'जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है'- इस स्थल पर 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साध्य 'धूम' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है' नियमपूर्वक उपस्थित रहता है। लेकिन 'जहाँ-जहाँ आग है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ निश्चित रूप से संयोग है' ऐसा नहीं है- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साधन 'आग' का अव्यापक है। इस प्रकार साध्य 'धूम' का व्यापक तथा साधन 'आग' का अव्यापक होने से 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधिरूप धर्म है। यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' समारोपित अर्थात् निश्चित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि इसकी उपलब्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चित हो जाती है। कि. 5, तथा तर्कभाषा मुसलगाँवकर की हिन्दी व्याख्या सहित।

येन च प्रतिबद्धं तद्व्यापकम्[23]। व्याप्तिर्नाम साध्येन सह हेतोः सम्बन्धः, यश्च सामानाधिकरण्यरूप अविनाभाव इत्यादिशब्दैर्व्यवह्रतो भवति[24]। धूमादिर्व्याप्यो वह्न्यादिर्व्यापक इति यः प्रत्ययस्तत्पूर्वकम्। लिङ्गिग्रहणं चावर्तनीयम्। तेन लिङ्गमस्यास्तीति पक्षधर्मताज्ञानमपि दर्शितं भवति[25]। पर्वतो वह्निमान् धूमात् इत्यनुमितौ प्रथमं वह्निधूमयो-र्व्याप्यव्यापकत्वस्मरणरूपं व्याप्तिज्ञानम्। अनन्तरं व्याप्यस्य धूमस्य पर्वतवृत्तित्वज्ञानरूपं पक्षधर्मताज्ञानम्[26]। तथा च व्याप्यव्यापक-भावज्ञानपक्षधर्मताज्ञानपूर्वकमनुमानम्। स एव परामर्श अनुमितौ जनकः। अनुमितिस्तु पर्वतो वह्निमानिति बुद्धिवृत्तिः। वह्निमनुमिनोमीति वा पौरुषेयो बोधः, तत्करणं परामर्शोऽनुमानम्[27]। अनुमितिं प्रति व्याप्तिज्ञानं परामर्शश्च निमित्तकारणं भवति, व्याप्तिज्ञानपरामर्शयोर्बुद्धेर्वृत्त्यात्मकत्वात्,

बुद्धेर्वृत्तीनां सर्वत्र निमित्तकारणत्वम्, स्वयं बुद्धिस्तूपादानकारणमिति विवेकः[28] ।

त्रिसाधनं त्र्यवयवम्[29] । पक्षहेतुदृष्टान्ता इति त्र्यवयवम्। पक्षः प्रतिज्ञापदम्। यथा-वह्निमानयं प्रदेशः साध्यवस्तूपन्यासः पक्षः[30] ।

व्याप्य जिसके साथ सम्बद्ध हो वह **व्यापक** है। हेतु का साध्य के साथ सम्बन्ध **व्याप्ति** है जो सामानाधिकरण्यरूप है तथा जो अविनाभाव आदि पदों के द्वारा प्रयुक्त होता है। यहाँ धूम आदि व्याप्य एवं वह्नि आदि व्यापक हैं। व्याप्य-व्यापक-भावरूप व्याप्तिज्ञान पूर्वक ही **अनुमिति** होती है। यहाँ 'लिङ्गी' शब्द का ग्रहण पुनः अपेक्षित है। **लिङ्गी** शब्द से '**लिङ्ग यहाँ विद्यमान है**' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पक्षधर्मताज्ञान का भी ग्रहण हो जाता है। **पर्वत आगवाला है, धूम के कारण** इस अनुमिति में प्रथमतः धूम और वह्नि के व्याप्य-व्यापक-भावरूप स्मरण **व्याप्तिज्ञान** है। व्याप्यरूप धूम का पर्वत पर ज्ञान **पक्षधर्मताज्ञान** है। व्याप्य-व्यापक-भावज्ञान तथा पक्षधर्मताज्ञान पूर्वक अनुमान होता है। वही परामर्श है जो अनुमिति को उत्पन्न करता है। अनुमिति 'पर्वत आग वाला है' इस प्रकार की बुद्धि का व्यापार है। 'मैं आग का अनुमान करता हूँ' इस प्रकार बुद्धिव्यापार का चित्त में प्रतिबिम्बित चैतन्य से सम्बन्ध **प्रमा** या **पौरुषेयबोध** है। इस पौरुषेयबोध का असाधारण कारण परामर्श है तथा वही अनुमान है। बुद्धि का व्यापार सर्वत्र निमित्त कारण होता है। **व्याप्तिज्ञान** और **परामर्श** बुद्धि के व्यापार है। अतः अनुमिति में ये दोनों निमित्त कारण हैं। बुद्धि स्वयं अनुमिति का उपादान कारण है।

अनुमान प्रक्रिया में तीन अवयव साधन हैं- पक्ष, हेतु तथा दृष्टान्त। **पक्ष** का अर्थ **प्रतिज्ञा** है, जैसे **यह प्रदेश वह्निमान् है** अर्थात् जिसमें साध्य वस्तु का प्रतिपादन किया जाय वह **पक्ष** है।

त्रिरूपो हेतुः त्रैरूप्यं पुनः पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे चासत्त्वमिति। अत्रोदाहरणं यथा धूमवत्त्वादिति[31] । सामान्यतो लक्षितमनुमानं विशेषत-स्त्रिविधम् - पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्टञ्चेति। तत्र प्रथमं तावद् द्विविधम् - वीतमवीतं च। 1. अन्वयमुखेन प्रवर्तमानं विधायकं वीतम्। 2. व्यतिरेकमुखेन प्रवर्तमानं निषेधकम् अवीतम्। तत्रावीतं शेषवत्। शिष्यते

परिशिष्यते इति शेषः, स एव विषयतया यस्यास्त्यनुमानज्ञानस्य तत् शेषवत्। 1. वीतं द्वेधा - पूर्ववत् सामान्यतोदृष्टं च। तत्रैकं दृष्टस्वलक्षण-सामान्यविषयं यत् तत् पूर्ववत्, पूर्वं प्रसिद्धं दृष्टस्वलक्षणसामान्यमिति यावत्। तदस्य विषयत्वेनास्त्यनुमानज्ञानस्येति पूर्ववत्। यथा - धूमाद्वह्नित्व-सामान्यविशेषः पर्वतेऽनुमीयते, तस्य च वह्नित्वसामान्यविशेषस्य स्वलक्षणं वह्निविशेषो दृष्टो रसवत्याम्। अपरं च वीतं सामान्यतोदृष्टम् अदृष्टस्वलक्षणसामान्यविषयम्[32]

हेतु तीन प्रकार का है-पर्वत आदि पक्ष में भाव, रसोई आदि सपक्ष में भाव, झील आदि विपक्ष में अभाव। उपर्युक्त उदाहरण '**पर्वत आगवाला है, धूम से युक्त होने के कारण्**' में धूम हेतु है।

अनुमान तीन प्रकार के हैं- पूर्ववत्, शेषवत् तथा सामान्यतोदृष्ट।

प्रथमतः अनुमान के दो भेद हैं-वीत एवं अवीत। अन्वय व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर वह्नि आदि व्यापक की पर्वत आदि पक्ष में सत्ता सिद्ध करने वाला अनुमान **वीत** है। व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर व्यापक के निषेध द्वारा व्याप्य का पक्ष में निषेध करने वाला अनुमान **अवीत** है। अवीत का दूसरा नाम **शेषवत्** है। जो बच जाय वह शेष है। वही जिस अनुमानरूप ज्ञान का विषय हो वह **शेषवत्** अनुमान है।

वीत अनुमान दो प्रकार का है- पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट। **पूर्ववत्** अनुमान वह है जिसका विषय वस्तु का सामान्यरूप होता है तथा जिसका विशिष्ट रूप पहले दृष्ट रहता है। 'पूर्व' का अर्थ है प्रसिद्ध अर्थात् वस्तु का सामान्यरूप, जिसके विशिष्टरूप का पहले प्रत्यक्ष हो चुका है। ऐसा 'सामान्य' जिस अनुमान का विषय हो, वह **पूर्ववत्** अनुमान है, जैसे धूम के द्वारा 'वह्नित्व' रूप सामान्य धर्म से युक्त विशेषरूप अर्थात् पर्वत पर स्थित वह्नि का अनुमान होना, जिसका वह्निविशेषरूप रसोई में पहले देखा जा चुका है।

सामान्यतोदृष्ट नामक दूसरे प्रकार के वीत अनुमान का विषय ऐसी सामान्य वस्तु है, जिसका अपना असाधारण या विशिष्टरूप पहले न देखा गया हो।

यथेन्द्रियविषयकमनुमानम्। अत्र हि रूपादिविज्ञानानां क्रियात्वेन करणवत्त्वमनुमीयते[33]।

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्[34]।

अत्र प्रधानपुरुषावतीन्द्रियौ तयोः सामान्यतोदृष्टादनुमानात् सिद्धिः। यस्मान्महदादिलिङ्गं त्रिगुणं दृष्ट्वा कार्यं, तत्कारणमदृष्टमप्यस्ति त्रिगुणं चेति साध्यते प्रधानम्, न ह्यसतः सदुत्पत्तिः स्यादिति, न च कारणासदृशं कार्यं स्यादिति। व्यक्तं तु प्रत्यक्षेणैव साधितमिति तदर्थे न प्रयत्नः। यस्माज्जडमपि प्रधानं प्रसूतिक्रियायां प्रवर्तते तस्मादस्ति लोहस्य चलनक्रियाशक्तिहेतुचुम्बकवदवश्यं पुरुष इति ज्ञसिद्धिः[35]। यद्यपि करणत्वसामान्यस्य छिदादौ वास्यादिस्वलक्षणमुपलब्धम्, तथापि यज्जातीयस्य रूपादिज्ञाने करणत्वमनुमीयते तज्जातीयस्य करणस्य न दृष्टं स्वलक्षणं प्रत्यक्षेण, इन्द्रियजातीयं हि तत्करणम्। न चेन्द्रियत्वसामान्यस्य स्वलक्षणमिन्द्रियविशेषः प्रत्यक्षगोचरोऽर्वाग्दृशाम्, यथा वह्नित्वसामान्यस्य स्वलक्षणं वह्निः। सोऽयं पूर्ववतः सामान्यतोदृष्टात् सत्यपि वीतत्वेन तुल्यत्वे विशेषः[36]।

जैसे इन्द्रियविषयक अनुमान। रूप, रस आदि का विज्ञान जिस क्रिया के द्वारा होता है उस का असाधारण कारण होने से इन्द्रिय का अनुमान होता है। अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि भी सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। प्रधान तथा पुरुष अतीन्द्रिय पदार्थ हैं। उनकी सिद्धि भी सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। महत् आदि कार्य को त्रिगुणात्मक देखकर उसका अदृष्ट कारण प्रधान भी त्रिगुणात्मक है यह सिद्ध होता है, क्योंकि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होती, और न कारण से भिन्न कार्य होते। स्थूल विषय की सिद्धि तो प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही होती है। इसलिये यहाँ उसके लिये प्रयास करने की आवश्यक्ता नहीं है। जड़ होता हुआ भी प्रधान आविर्भाव में प्रवृत्त होता है, अतः लोहे की चलन क्रिया शक्ति में कारणरूप चुम्बक के समान जड़ प्रधान की आविर्भावरूपक्रिया के प्रवर्तक पुरुष की सिद्धि होती है। यद्यपि छेदन आदि क्रिया स्थल में करणत्व सामान्य का अपना विशिष्ट प्रकार कुठार आदि पहले से दृष्ट हुआ रहता है। लेकिन रूप, रस आदि के ज्ञान के विषय में जिस प्रकार के करण का अनुमान होता है उसका अपना विशिष्ट रूप कभी भी दृष्ट नहीं हुआ करता, क्योंकि वह करण इन्द्रियत्व विशिष्ट है और इन्द्रियत्व सामान्य का अपना विशिष्टरूप सामान्य व्यक्ति

को कभी दृष्ट नहीं होता। इसके विपरीत 'वह्निनत्व' सामान्य का विशिष्टरूप (रसोई में स्थित वह्नि) दृष्ट होता है। वीत अनुमान के दोनों भेद पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट में यही अन्तर है।

आप्तवचनम्

आप्तश्रुतिः आप्तवचनं तु[37]।

प्रयोजकवृद्धशब्दश्रवणसमनन्तरं प्रयोज्यवृद्धप्रवृत्तिहेतुज्ञानानुमानपूर्वकत्वाच्छब्दार्थसम्बन्धग्रहणस्य, स्वार्थसम्बन्धज्ञानसहकारिणश्च शब्दस्यार्थ-प्रत्यायकत्वादनुमानपूर्वकत्वमित्यनुमानानन्तरं शब्दं लक्षयति। आप्ता प्राप्ता युक्तेति यावत्। आप्ता चासौ श्रुतिश्चेति आप्तश्रुतिः। श्रुतिः वाक्यजनितं वाक्यार्थज्ञानम्,[38] शब्दप्रमाणम्[39]। अत्र च यदा शब्दस्य प्रमाणत्वं तदा शाब्दबोधात्मिकाया बुद्धिवृत्तेः प्रमात्वम्, यदि च शाब्दबोधात्मकवृत्तेः प्रमाणत्वं तदा वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यस्य प्रमात्वमिति[40]। तच्च स्वतः-प्रमाणम्[41]। वाक्यजन्यं ज्ञानं हि द्विविधं स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं च। तत्र अन्यप्रमाणनिरपेक्षस्वार्थबोधनसमर्थं स्वतःप्रमाणम्।

आप्तवचन

आप्तपुरुष से उच्चरित वाक्य द्वारा उत्पन्न यथार्थ ज्ञान **आप्तवचनरूप प्रमाण** है। जब कोई प्रेरक व्युत्पन्न व्यक्ति किसी व्युत्पन्न शिष्य को कार्य विशेष का आदेश करने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है और व्युत्पन्न शिष्य तदनुकूल प्रवृत्त होता है तब समीपस्थ अव्युत्पन्न बालक सर्वप्रथम गाय को लाने आदि के विषय में होने वाली प्रवृत्ति के कारणभूत ज्ञान का अनुमान करके फिर शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न होने वाले ज्ञान की शब्दजन्यता का अनुमान करता है, जिससे उसे शब्द और उसके अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। शब्द और अर्थ के इस सम्बन्ध का ज्ञान होने पर ही शब्द अपने अर्थ की प्रतीति कराता है। इस प्रकार शब्दज्ञान का अनुमानपूर्वक होना सिद्ध है। **आप्त** शब्द का अर्थ **प्राप्त या युक्त** है। **आप्तश्रुति** का अर्थ है आप्तरूप **श्रुति***। वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थज्ञान **श्रुति** है। वह वाक्यार्थज्ञान स्वतन्त्ररूप से प्रमाण है तथा वही शब्दप्रमाण है। जब शब्द प्रमाण है तब शब्द से उत्पन्न ज्ञानरूप बुद्धिव्यापार **प्रमा** है और जब

शब्द से उत्पन्न ज्ञानरूप बुद्धिव्यापार प्रमाण है तब बुद्धि के व्यापार में प्रतिबिम्बित चैतन्य **प्रमा** है।

* **श्रूयते इति श्रुतिः श्रोत्रग्राह्यं वाक्यमिति वाच्योऽर्थः**, तज्जन्यं ज्ञानमिति **लाक्षणिकोऽर्थ इति।** कि. 5

इस व्युत्पत्ति के आधार पर श्रोत्रग्राह्य शब्दात्मक वाक्य ही श्रुति का वाच्यार्थ है तथा वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थज्ञान उसका लक्ष्यार्थ है।

वाक्यजन्य ज्ञान स्वतः प्रमाण एवं परतः प्रमाण के भेद से दो प्रकार का है। जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा न हो तथा जो अपने अर्थ बोध में स्वयं समर्थ हो वह **स्वतःप्रमाण** है।

तच्च आम्नायवाक्यजन्यम्। यच्चप्रमाणान्तरसापेक्षस्वार्थबोधनसमर्थं तत् परतःप्रमाणं च।

तच्च आम्नायरूपमूलप्रमाणसापेक्षस्मृत्यादिवाक्यजन्यम्[42]। **अपौरुषेय-वेदवाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशङ्काविनिर्मुक्तेर्युक्तं भवति। एवं वेदमूलस्मृतीतिहासपुराणवाक्यजनितमपि ज्ञानं युक्तं भवति। आदिविदुषश्च कपिलस्य कल्पादौ कल्पान्तराधीतश्रुतिस्मरणसम्भवः, सुप्तप्रबुद्धस्येव पूर्वेद्युरवगतानामर्थानामपरेद्युः**[43]। **तु शब्देनानुमानाद् व्यवच्छिनत्ति। वाक्यार्थो हि प्रमेयो न तु तद्धर्मो वाक्यम्, येन तत्र लिङ्गं भवेत्। न च वाक्यं वाक्यार्थं बोधयत् सम्बन्धग्रहणमपेक्षते, अभिनवकविविरचितस्य वाक्यस्यादृष्टपूर्वस्याननुभूतचरवाक्यार्थबोधकत्वादिति**[44]। **पदज्ञानं करणम्, पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापारः, वाक्यार्थसंसर्गविषयकबोधः फलमिति**[45]।

वह स्वतः प्रमाण वेदवाक्यजन्य है। जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा हो तथा उन प्रमाणों की सहायता से जो अपने अर्थबोध में समर्थ हो वह **परतः प्रमाण** है। परतः प्रमाण वेदवाक्यों के आधार पर निर्मित स्मृति आदि के वाक्यों से उत्पन्न होता है। अपौरुषेय वेद वाक्यों से उत्पन्न तथा संशय, विपर्यय आदि समस्त पुरुषदोषों से रहित ज्ञान स्वतः प्रामाणिक होता है। इसी प्रकार वेद को आधार बनाकर लिखे गये स्मृति, इतिहास और पुराणों के वाक्यों से उत्पन्न ज्ञान भी प्रामाणिक होता है। प्रथम ज्ञानी **कपिल*** के द्वारा **पूर्वकल्प**# में अध्ययन किये गये वेद का इस कल्प के आरम्भ में स्मरण होना सम्भव है, जैसे कि सोकर उठे हुए पुरुष के द्वारा पूर्व अवगत विषयों

का दूसरे दिन स्मरण होना सम्भव है। साङ्ख्यकारिका की पाँचवीं कारिका में प्रयुक्त 'तु' पद आगम प्रमाण को अनुमान से पृथक् करता है। वाक्यार्थ प्रमेय होता है, वाक्य उसका धर्म नहीं होता, जिससे वहाँ उसका लिङ्ग हो सके। वाक्य वाक्यार्थ का बोध कराता हुआ व्याप्तिज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि नवीन कवि द्वारा रचित पहले कभी नहीं सुना गया वाक्य सर्वथा नूतन अर्थ का ज्ञान कराता है ऐसा देखा जाता है।

* कपिल साङ्ख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक हैं।

भारतीय काल गणना के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन 'कल्प' कहलाता है। ऐसे तीस कल्पों को मिलाकर ब्रह्मा का एक मास होता है। ये तीस कल्प इस प्रकार हैं- 1. श्वेतवाराह 2. नीललोहित 3. वामदेव 4. गाथान्तर 5. रौरव 6. प्राण 7. बृहत्कल्प 8. कन्दर्प 9. सत्य 10. ईशान 11. ध्यान 12. सारस्वत 13. उदान 14. गरुड़ 15. कौर्म्म (यह ब्रह्म का पौर्णमास या पूर्णिमा है) 16. नारसिंह 17. समाधि 18. आग्नेय 19. विष्णुज 20. सौर 21. सोमकल्प 22. भावन 23. सुप्तमाली 24. वैकुण्ठ 25. आर्च्चिष 26. वल्मीकल्प 27. वैराज 28. गौरीकल्प 29. माहेश्वर 30. पितृकल्प (यह बह्मा की अमावास्या है।) वर्तमान कल्प श्वेतवाराह है। (श. क. द्रु.)

शाब्दबोधप्रक्रिया में **पदज्ञान करण** है। पद से उत्पन्न होने वाले पदार्थ का **स्मरण व्यापार** है। वाक्य के अन्तर्गत पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न **ज्ञान फल** है।

प्रसिद्धलक्षणागुणयोगात्तिस्त्रः शब्दवृत्तयः[46]। पदपदार्थयोः सम्बन्धः[47]। सा च शक्तिः व्यक्त्यभिन्नजातौ तिष्ठति - यथा गोपदस्य गवाभिन्नगोत्वे इति[48]। शक्यसम्बन्धो लक्षणा[49]। तत्र लक्षणात्रैविध्यम्। जहल्लक्षणा-जहल्लक्षणाजहदजहल्लक्षणा चेत्यादि[50]। यथा- जहल्लक्षणा 'गङ्गायां घोष' इत्यत्र गङ्गापदे शक्यसम्बन्धितीरबोधजनिका। अजहल्लक्षणा शक्यलक्ष्योभयबोधजनिका, यथा- 'छत्रिणो यान्ति' इत्यत्र छत्रिपदस्यैक-सार्थवाहित्वे लक्षणा। जहदजहल्लक्षणा शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधिका,

शब्द की तीन वृत्तियाँ हैं- **प्रसिद्धवृत्ति, लक्षणावृत्ति तथा गुणवृत्ति।** पद और पदार्थ का सम्बन्ध **वृत्ति** है। **प्रसिद्ध#** नामक पद की शक्ति व्यक्ति से अभिन्न उसकी जाति में रहती है, जैसे 'गो' पद की शक्ति 'गो' अर्थ से

अभिन्न उसकी गोत्वजाति में स्थित है। **शक्य$** का सम्बन्ध **लक्षणा** है। **लक्षणावृत्ति** तीन प्रकार की होती है- जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा तथा जहदजहल्लक्षणा। **जहल्लक्षणा**- 'गङ्गा में गाँव है'- यहाँ गङ्गा पद में शक्य 'जलप्रवाह' से सम्बद्ध तट का ज्ञान कराने वाली शक्ति **जहल्लक्ष्णा** है। **अजहल्लक्षणा**- शक्य और लक्ष्य दोनों का बोध कराने वाली शक्ति अजहल्लक्षणा है - जैसे 'छत्रधारी पुरुष जाते हैं' यहाँ शक्य छत्रधारी व्यापारियों के प्रधान के साथ लक्ष्य अन्य व्यापारियों का ज्ञान **अजहल्लक्षणा** से होता है। **जहदजल्लक्षणा**- शक्यता के **अवच्छेदक&** को छोड़कर व्यक्ति मात्र का ज्ञान कराने वाली शक्ति **जहदजल्लक्षणा** है

 # पदपदार्थयोः सम्बन्धः शक्तिलक्षणान्यतररूपः। स्वा. भा. 5

तत्रापि प्रसिद्धिलक्षणागुणयोगात्तिस्रः शब्दवृत्तयः। मा. वृ. 5

पद की स्वाभाविक शक्ति अभिधा है। विद्वान् इसे प्रसिद्ध, शक्ति आदि नामों से प्रयुक्त करते हैं। माठरवृत्ति में 'प्रसिद्ध' तथा स्वामिनारायण भाष्य में 'शक्ति' के नाम से इसका प्रयोग हुआ है।

$ पद में स्थित शक्ति का विषय शक्य है। यहाँ शक्य का तात्पर्य अभिधेय अर्थ से है। इसी प्रकार लक्षणा का विषय लक्ष्य है। लेखक

& अन्यून-अनतिरिक्त-धर्मत्वम् अवच्छेदकत्वम्। अवच्छेदक पदार्थ में रहनेवाला वह धर्म है जो उसके स्वरूप को यथावत् प्रस्तुत करता है, न कम और न अधिक। जैसे घट में रहने वाला नित्य धर्म 'घटत्व' अवच्छेदक है, क्योंकि वह उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करता है, उसके अस्तित्व का परिचायक है। अवच्छेदक चार हैं- धर्म, सम्बन्ध, देश और काल। इन अवच्छेदकों के द्वारा पदार्थ का आहृत धर्म अवच्छिन्न होता है। यहाँ काल को अवच्छेदक के रूप में प्रयुक्त किया गया है। आहृत धर्म किसी भी पदार्थ का तात्कालिक एवं परिवर्तनशील धर्म है जो परिस्थिति के अनुसार उपस्थित होकर उसके स्वरूप को प्रभावित करता है। यहाँ पुरुष शक्य है तथा उसमें उपस्थित तात्कालिक धर्म शक्यता आहृत धर्म है, जो अवच्छेदक काल के द्वारा अवच्छिन्न है। (न. न्या. भा. प्र. उज्वला झा द्वारा आङ्ग्लानुवादसहित)

यथा- 'सोऽयं पुरुष' इत्यत्र तत्कालावच्छिन्नत्वादिपरित्यागेन पुरुषमात्रबोधिका[51]। तात्पर्यानुपपत्तिरन्वयानुपपत्तिश्च लक्षणाबीजं भवति[52]। गौणी द्विविधा - यथा इदमादिपदभिन्नविशेष्यवाचकपद-समानविभक्तिकपदनिरूपिता 'सिंहो माणवक' इत्यत्र सिंहसादृश्यबोधिका,

द्वितीया तु इदमादिपदविशेष्यवाचकपदसमानविभक्तिकपदनिरूपिता[53] यथा- 'सिंहोऽयम्' इत्यत्र सिंहसदृशबोधिका[54]।

पदं चतुर्विधम् - योगिकं, रूढं, योगरूढं यौगिकरूढञ्चेति। तत्रावयवार्थबोधजनकं यौगिकं- यथा पाचकादिपदम्।

जैसे- 'वह यह पुरुष है' - यहाँ तत्काल एवं एतत्काल शक्यता के अवच्छेदक हैं। तत्काल एवं एतत्काल से अवच्छिन्न शक्यतावाची 'वह' और 'यह' इन दोनों पदों के अर्थों को छोड़कर केवल लक्ष्य अर्थ 'पुरुष' का ज्ञान **जहदजहल्लक्षणा** से होता है। तात्पर्य की अनुपपत्ति एवं अन्वय की अनुपपत्ति दोनों मिलकर लक्षणा का कारण अर्थात् बीज होता है। **गौणी*** दो प्रकार की होती है। **प्रथम प्रकार की गौणी** - जैसे 'बालक सिंह है' यहाँ 'इदम्' पद का विशेष्य रूप में प्रयोग नहीं किया गया है। विशेष्य रूप में 'बालक' पद का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार विशेष्य वाचक पद 'बालक' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंह' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है। **द्वितीय प्रकार की गौणी**- 'यह सिंह है' - यहाँ 'इदम्' पद का प्रयोग विशेष्य रूप में किया गया है। इस विशेष्य वाचक पद 'इदम्' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंहः' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है।

*माठरवृत्ति में गौणी का पद की तीसरी वृत्ति के रूप में प्रयोग हुआ है, जबकि स्वमिनारायण भाष्य में इसे लक्षणा के अन्तर्गत समाहित कर दिया गया है। लेखक

पद चार प्रकार के हैं - यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ एवं यौगिकरूढ़। पद के **अवयवों#** का अर्थबोध कराने वाला **यौगिक** है, जैसे- पाचक आदि।

यहाँ अवयव से तात्पर्य किसी पद में रहने वाले उसके धातु, प्रत्यय आदि से है। इन अवयवों में प्रत्येक की अपनी-अपनी शक्ति होती है। ये अवयव मिलकर पद के अर्थ को निश्चित करते हैं। इन अवयवों के द्वारा जब किसी पद के अर्थ का निश्चय होता है तो वह यौगिक कहलाता है। जैसे 'पाचक' पद में 'पच्' धातु 'पकाना' और 'अक' प्रत्यय 'क्रिया का कर्ता पकानेवाला' अर्थ निश्चित करते हैं। यौगिक कृदन्त, तद्धित और समस्तपद होते हैं। लेखक

यत्रावयवशक्तिनिरपेक्षया समुदायशक्त्यैव बोधो भवति तद् रूढम्

-यथा गोमण्डपादिपदम्। यत्रावयवशक्तिविषये समुदायशक्तिरप्यस्ति तद् योगरूढं यथा- पङ्कजादिपदम्, अवयवशक्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वरूपमर्थं बोधयति, समुदायशक्त्या च पद्मत्वेन रूपेण पद्मं बोधयतीति। यत्र यौगिकार्थरूढ्यर्थयोः स्वातन्त्र्येण बोधस्तद् यौगिकरूढम्- यथा उद्भिदादिपदम्। तत्र हि उद्भेदनकर्ता तरुगुल्मादिः, यागविशेषोऽपि च बुद्ध्यते[55] ।

शाब्दबोधे तु – 'आसत्तिज्ञानमाकाङ्क्षाज्ञानं योग्यताज्ञानं तात्पर्यज्ञानञ्च कारणम्।

जहाँ **अवयवशक्ति** की अपेक्षा के विना **समुदायशक्ति**# के द्वारा अर्थ बोध होता है वह **रूढ़** है, जैसे- गो, मण्डप आदि। जहाँ अवयवशक्ति तथा समुदायशक्ति दोनों के द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है, वह **योगरूढ़** है, जैसे- पङ्कज आदि। यहाँ अवयवशक्ति से पङ्क के कर्तृत्व का ज्ञान होता है तथा समुदायशक्ति से कमल का ज्ञान होता है। जहाँ यौगिक और रूढ़ दोनों अर्थों का स्वतन्त्रतापूर्वक बोध होता है, वह **यौगिकरूढ़** है, जैसे- उद्भिद् आदि। यहाँ उद्भेदन (उगने की क्रिया) का कर्ता वृक्ष, झाड़ी आदि यौगिक अर्थ तथा 'उद्भिद्' याग विशेष रूढ़ अर्थ है। प्रथम अर्थ का ज्ञान अवयवशक्ति तथा दूसरे अर्थ का ज्ञान समुदायशक्ति से होता है।

जहाँ पद मात्र के द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक अर्थ का निर्धारण हो, पद के अवयवों की अपेक्षा न हो, वह समुदायशक्ति हैं। जैसे- 'गो' पद के अवयवों के द्वारा निर्धारित 'गमनशील पदार्थ' स्वीकार्य नहीं है। समुदाय के द्वारा निर्धारित अर्थ 'गाय' स्वीकार्य है। इसी प्रकार 'मण्डप' पद के द्वारा अवयवों के आधार पर 'जो माँड पीता है वह मण्डप है' ऐसा अर्थ निर्धारित होता है जो अभिप्रेत नहीं है। 'मण्डप' समुदाय मात्र से निर्धारित अर्थ 'किसी शुभकार्य के निमित्त बना हुआ घर' अभिप्रेत है।

जहाँ पद के प्रत्येक अवयव (प्रकृति-प्रत्यय आदि) का अलग-अलग अर्थ हो तथा उनके सम्मिलित रूप से अर्थ का निर्धारण हो वह 'अवयवशक्ति' है। अवयवशक्ति 'यौगिक' का तथा समुदायशक्ति रूढ़ का कारक है।

शाब्दबोध की प्रक्रिया में आसत्तिज्ञान, आकाङ्क्षाज्ञान, योग्यताज्ञान और तात्पर्यज्ञान कारण है।

अन्वयप्रतियोग्यनुयोगिपदयोरव्यवधानेनोपस्थितिः आसत्तिः, तज्ज्ञानं

कारणम्, तेन प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि 'गामानय' इत्यादिवाक्यानि न प्रमाणम्, आसत्त्यभावात्। यत्पदस्य यत्पदाभावप्रयुक्तमन्वयबोधाजनकत्वं तत्पदसमभिव्याहृततत्पदत्वम् आकाङ्क्षा, कारकपदस्य क्रियापदं विनान्वयबोधकत्वाभावात् कारकपदसमभिव्याहृतक्रियापदत्वमाकाङ्क्षा तज्ज्ञानविरहाच्च 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इतिवाक्यं न प्रमाणम्। एकपदार्थेऽपरपदार्थसम्बन्धो योग्यता। तज्ज्ञानविरहाद् 'वह्निना सिञ्चति' इति वाक्यं न प्रमाणम्। वाक्योच्चारयितुर्यादृशार्थबोधेच्छया वाक्योच्चारणं भवति तादृशीच्छा तात्पर्यम्। तज्ज्ञानाभावाच्च 'सैन्धवमानय' इत्यत्र क्वचिदश्वस्य क्वचिल्लवणस्य वा बोधो न स्यात्[56]।

तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम्[57]।

महदाद्यारम्भक्रमे स्वर्गापूर्वदेवतादौ च, तत्र तेषामभावः प्राप्तः[58]। तथा च सामान्यतोदृष्टानुमानात् शेषवदनुमानाच्च यदतीन्द्रियं न सिद्ध्यति तत्र आगमप्रमाणमनुसन्धेयमिति भावः[59]।

सम्बन्ध के अनुयोगिन् और **प्रतियोगिन्*** पदों का बाधा रहित होकर उपस्थित होना **आसत्ति** है। उसका ज्ञान शाब्दबोध का कारण है। भिन्न-भिन्न समय में एक साथ उच्चरित न होने वाले 'गाय को' एवं 'ले आओ' पदों से बने हुए 'गाय को ले आओ' आदि वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि यहाँ आसत्ति का अभाव है । जो पद जिस पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता उस पद के द्वारा साहचर्य भाव से उस पद को उपस्थित करना **आकाङ्क्षा** है। जैसे कारक पद क्रिया पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता, अतः सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न करने के लिए कारक पद के द्वारा साहचर्य भाव से क्रिया पद को उपस्थित करना **आकाङ्क्षा** है। 'गाय, घोड़ा, पुरुष, हाथी' आदि वाक्यों में कारक पद गाय, घोड़ा, आदि का क्रियापद से सम्बद्ध नहीं होने से वाक्य ज्ञान नहीं होता। अतः ऐसे वाक्य आकाङ्क्षाज्ञान के अभाव के कारण प्रमाण नहीं हैं। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध **योग्यता** है। इस ज्ञान के अभाव में 'आग से सींचता है' यह वाक्य प्रमाण नहीं है। वक्ता के द्वारा जिस प्रकार के अर्थज्ञान की इच्छा से वाक्यों का उच्चारण होता है, वैसी इच्छा **तात्पर्य** है। तात्पर्यज्ञान के अभाव में 'सैन्धव लाओ' इस वाक्य में कहीं 'घोड़ा' और कहीं 'नमक' का ज्ञान नहीं हो सकेगा।

दृष्ट एवं अनुमान (सामान्यतोदृष्ट तथा शेषवत्) प्रमाणों से जिन तत्त्वों की सिद्धि न हो ऐसे अतीन्द्रिय परोक्षतत्त्व महत् आदि के आरम्भक्रम, स्वर्ग, अपूर्व, देवता आदि की सिद्धि आप्तवचन से होती है।

* नव्यन्याय में सम्बन्ध को सप्रतियोगिक पदार्थ कहा गया है अर्थात् सम्बन्ध का एक प्रतियोगिन् और एक अनुयोगिन् होता है। जिस सम्बन्ध का जो प्रतियोगिन् होता है वह उसी सम्बन्ध से अनुयोगिन् में रहता है तथा जो जिस सम्बन्ध का अनुयोगिन् होता है वहाँ उसी सम्बन्ध से प्रतियोगिन् रहता है। यहाँ कर्ता और क्रिया के बीच सम्बन्ध का 'कर्ता' अनुयोगिन् तथा 'क्रिया' प्रतियोगिन् है। (न. न्या. भा. प्र., उज्वला झा द्वारा आङ्ग्लानुवादसहित)

सन्दर्भ

1. सां.त.कौ. 4
2. स. बो. 4
3. सां.त.कौ. 4
4. सा. बो. 4
5. वही 4
6. गौ. पा. भा. 4.
7. सां.त.कौ. 5
8. सां.का. 4
9. सां.त.कौ. 4
10. सा़ं.का. 5
11. सां.त.कौ. 5
12. वही
13. सां.त.कौ. 5
14. सां.त.कौ. 27
15. सां.त.कौ. 30
16. सां.का. 30
17. सां.त.कौ. 30
18. वही
19. वही 31
20. सां.का. 31
21. वही 5

22. स्वा. भा. 5
23. सां.त.कौ. 5
24. स्वा. भा. 5
25. सां.त.कौ. 5
26. सा. बो. 5
27. स्वा. भा. 5
28. वही
29. मा. वृ. 5
30. वही
31. वही
32. सां. त. कौ. 5
33. वही
34. सां. का. 6
35. मा. वृ. 6
36. सां.त.कौ. 5
37. सां.का. 5
38. सां.त.कौ. 5
39. स्वा. भा. 5
40. वही
41. सां.त.कौ. 5
42. सा. बो .5
43. सां.त.कौ. 5
44. वही
45. स्वा. भा. 5
46. मा. वृ. 5
47. स्वा. भा. 5
48. वही
49. वही
50. मा. वृ. 5
51. स्वा. भा. 5
52. स्वा. भा. 5
53. वही
54. वही

55. वही
56. वही
57. सां. का. 6
58. सां.त.कौ. 6
59. कि॰ 6

तृतीय अध्याय

आचारमीमांसा

कर्म

उपष्टम्भकं चलं च रजः[1] ।

रजस्तु चलतया परितस्त्रैगुण्यं चालयेत्[2] । सत्त्वतमसी स्वयमक्रियतया स्वकार्यप्रवृत्तिं प्रत्यवसीदन्ती रजसोपष्टभ्येते, अवसादात् प्रच्याव्य स्वकार्ये उत्साहप्रयत्नं कार्येते[3] । यः कश्चिदुपस्तम्भश्चलता चोपलभ्यते तद् रजोरूपमित्यवगन्तव्यम्। तत्रोपस्तम्भः प्रयत्नः, चलता क्रिया। सा च द्विविधा, परिणामलक्षणा प्रस्पन्दलक्षणा च। तत्र परिणामलक्षणया सहकारिभावान्तरानुगृहीतस्य धर्मिणः पूर्वधर्मात् प्रच्युतिः । प्रस्पन्दलक्षणा प्राणादयः कर्मेन्द्रियवृत्तयश्च वचनाद्याः । बाह्यानां द्रव्याणामुत्पतन-निपतनभ्रमणादीनि[4] । यथा वर्तितैलेऽनलविरोधिनी, अथ च मिलिते सहानलेन रूपप्रकाशलक्षणं कार्यं कुरुतः, यथा वा वातपित्तश्लेष्माणः परस्परविरोधिनः शरीरधारणलक्षणकार्यकारिणः, एवं सत्त्वरजस्तमांसि मिथो विरुद्धान्यप्यनुवर्त्स्यन्ति स्वकार्यं करिष्यन्ति च[5] ।

आचारमीमांसा

कर्म

रजोगुण सक्रिय करने वाला एवं प्रेरक होता है। वह क्रिया के द्वारा तीन गुणों वाली इन्द्रिय आदि को अपने-अपने विषय की ओर प्रेरित करता है। सत्त्वगुण और तमोगुण स्वयं क्रिया से रहित होने के कारण अपने प्रकाशन एवं नियमन आदि कार्यों के उत्पादन में असमर्थ हैं। **रजोगुण** के द्वारा ये अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त किये जाते हैं अर्थात् रजस्, सत्त्व और तमस् को शिथिलता से मुक्त कर उन्हें अपने-अपने कार्य सम्पादन हेतु उत्तेजित करता

है । जो कोई प्रयत्न क्रिया के माध्यम से होता है, उसे रजोगुण का स्वभाव समझना चाहिये। **उपस्तम्भ** प्रयत्न तथा **चलता** क्रिया है। क्रिया के दो भेद हैं – **परिणामलक्षण** एवं **प्रस्पन्दलक्षण**। सहयोगी कारणों के द्वारा अपने पहले वाले धर्म को त्याग कर दूसरे धर्म को प्राप्त करना **परिणामलक्षण** है। प्राण आदि पाँच वायु तथा वाक् आदि कर्मेन्द्रियों की वचन आदि क्रिया **प्रस्पन्दलक्षण** है। बाह्य द्रव्यों का ऊपर की ओर जाना, नीचे की ओर आना, घूमना-फिरना आदि भी इसके उदाहरण हैं। जिस प्रकार बत्ती और तेल आग का विरोधी होने पर भी उसके साथ मिलकर वस्तुओं के रूप को प्रकाशित करने का कार्य करते हैं, जिस प्रकार परस्पर विरोधी वात, पित्त तथा कफ शरीर को धारण करने का कार्य करते हैं। उसी प्रकार सत्त्व, रजस् एवं तमस् भी परस्पर विरोधी होने पर भी परस्पर अनुकूल रहते हुए अपना कार्य करते हैं।

इह लोके द्विविधं कारणं परिणामकत्वादपरिणामकत्वाच्च। तत्रापरिणामकत्वात् मृत्पिण्डदण्डसूत्रोदकविदलान् पश्यामः, परिणामतश्च क्षीरं दधीति[6] । यथा क्षीरं दधिभावेन परिणमति, यदेव क्षीरं तदेव दधि। एवं प्रधानं व्यक्तभावेन परिणमति, दधिवत् व्यक्तं क्षीरवत् प्रधानमित्यर्थः। यदेवाव्यक्तं तदेव व्यक्तमिति[7] ।

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्[8] ॥

इस लोक में दो प्रकार के कारण हैं– परिणामी तथा अपरिणामी। इसमें **अपरिणामी** कारण मृत्पिण्ड, दण्ड, सूत्र, जल, कोविदार (कचनार) आदि हैं। **परिणामी** कारण दूध है जो दही रूप में परिणत होता है। 'जो दूध है वही दही है' इसप्रकार दूध दही रूप से परिणमित होता है। प्रधान भी व्यक्तभाव से परिणमित होता है। यहाँ **व्यक्त** दही के समान तथा **प्रधान** दूध के समान है। अतः जो अव्यक्त है वही व्यक्त है। अन्य शब्दों में कारण व्यापार के पूर्व भी कार्य कारण में विद्यमान रहता है। अविद्यमान होने पर कारण से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य की उत्पत्ति के लिए उसके उपादान कारण का होना आवश्यक है। कोई भी कार्य किसी निश्चित कारण से ही उत्पन्न होता है, सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न नहीं होते। जो कारण

जिस कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ है उससे उसी कार्य की उत्पत्ति होती है। निष्कर्ष रूप से कार्य **कारण#** से अभिन्न है। यह साङ्ख्य का प्रसिद्ध **कार्यकारणसिद्धान्त सत्कार्यवाद*** है।

 # कारणं द्विविधमुपादानं निमित्तं चेति। यत्र तादात्म्येन कार्यं भवति तदुपादानकारणं यथा गन्धं प्रति पृथिवी, पृथ्वीं प्रति तन्मात्राणि, तानि प्रत्यहङ्कारः, तं प्रति महत्तत्त्वम्, तत्प्रति च प्रकृतिरिति। उपादानकारणभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् – यथा घटोद्भावने सहकारी दण्डो निमित्तकारणमिति। स्वा. भा. 5

कारण दो प्रकार के हैं- उपादान कारण एवं निमित्त कारण। जहाँ तादात्म्य सम्बन्ध से कार्य की उत्पत्ति होती है, वह उपादान कारण है, जैसे- गन्धरूप कार्य का पृथिवी, पृथिवीरूप कार्य का तन्मात्र, तन्मात्ररूप कार्य का अहङ्कार, अहङ्काररूप कार्य का महत् तथा महद्रूप कार्य का अव्यक्त उपादान कारण है। उपादान कारण से भिन्न निमित्त कारण है, जेसे- घट कार्य की उत्पत्ति में सहकारी दण्ड, कुलाल आदि निमित्त कारण हैं।

*** इह कार्यकारणभावे चतुर्धा विप्रतिपत्तिः प्रसरति। असतः सज्जायत इति सौगताः सङ्गिरन्ते। नैयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति। वेदान्तिनः सतो विवर्तः कार्यजातं न वस्तुसदिति। साङ्ख्याः पुनः सतः सज्जायत इति।** स. द. स. सा. द. पृ. सं. 539

कार्य और कारण के परस्पर सम्बन्ध को लेकर चार प्रकार के मत हैं। 1. असत्कारणवाद- शून्यवादी बौद्ध के अनुसार असत्कारण से सत्कार्य उत्पन्न होता है। 2. असत्कार्यवाद- नैयायिक सत्कारण से असत्कार्य (वास्तविक और नवीन) की उत्पत्ति मानते हैं। 3. सत्कारणवाद-अद्वैत वेदान्तियों की मान्यता है कि सत्कारण से असत्कार्य (कल्पित) उत्पन्न होता है। 4. सत्कार्यवाद – साङ्ख्य के अनुसार सत्कारण से सत्कार्य ही उत्पन्न होता है अर्थात् सत्कारण ही सत्कार्य रूप में अपने को अभिव्यक्त करता है।

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य[9] ॥

कर्मकर्ता

आरभ्यते इति आरम्भः सर्गः[10]।

इत्येष प्रकृतिकृतो महदादिविशेषभूतपर्यन्तः।
प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थ इव परार्थ आरम्भः[11] ॥

यथौदनकाम ओदनाय पाके प्रवृत्त ओदनसिद्धौ निवर्तते, एवं प्रत्येकं पुरुषान् मोचयितुं प्रवृत्ता प्रकृतिर्यं पुरुषं मोचयति तं प्रति पुनर्न प्रवर्तते[12]।

औत्सुक्यनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्॥
रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः[13]॥

जैसे बछड़े के पोषण के लिए अचेतन दूध स्वतः निकलता है, वैसे ही पुरुष के मोक्ष के लिए अचेतन प्रकृति भी स्वतः प्रवृत्त होती है।

कर्मकर्ता

जो किया जाय वह **आरम्भ** या **सृष्टि** है। प्रकृति द्वारा महत् से लेकर आकाश आदि महाभूत तक की सृष्टि की गयी है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति ने अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये इस सृष्टि का निर्माण किया है। वस्तुतः इस निर्माण का मुख्य प्रयोजन पुरुष को कैवल्य प्राप्त करवाना है। जिस प्रकार ओदन का इच्छुक व्यक्ति चावल पकाने के लिए प्रवृत्त होता है और चावल के पक जाने पर उस क्रिया से निवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक पुरुष के कैवल्य के लिए प्रवृत्त हुई प्रकृति जिस पुरुष को मुक्ति प्राप्त करा देती है, उसके विषय में पुनः कभी प्रवृत्त नहीं होती। इच्छा की पूर्ति के लिए लोग कर्मों में प्रवृत्त होते रहते हैं, उसी प्रकार अव्यक्त भी पुरुष के कैवल्य के लिए प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार नर्तकी लोगों को नृत्य दिखाकर स्वयं उस नृत्य से निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुष के प्रयोजन को सिद्धकर हमेशा के लिए पुरुष से निवृत्त हो जाती है अर्थात् पुरुष को संसारचक्र से सदा के लिए मुक्त कर देती है।

तस्मान्न बध्यतेऽसौ न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः[14]॥

यथा जयपराजयौ भृत्यगतावपि स्वामिन्युपचर्येते, तदाश्रयेण भृत्यानां तद्भागित्वात्, तत्फलस्य च शोकलाभादेः स्वामिसंबन्धात्। भोगापवर्गयोश्च प्रकृतिगतयोरपि विवेकाग्रहात् पुरुषसम्बन्ध उपपादित इति[15]।

कर्मफलम्

सुखदुःखानुभवो हि भोगः[16]। दुःखत्रयम्, तत् खलु आध्यात्मिक-माधिभौतिकमाधिदैविकञ्च। तत्राध्यात्मिकं द्विविधम् – शारीरं मानसं च। शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तम्। मानसं कामक्रोधलोभमोह-भयेर्ष्याविषादविषयविशेषादर्शननिबन्धनम्। सर्वञ्चैतदान्तरोपायसाध्यत्वादा-ध्यात्मिकं दुःखम्। बाह्योपायसाध्यं दुःखं द्वेधा – आधिभौतिकम् आधिदैविकञ्च। तत्र आधिभौतिकं मानुषपशुमृगपक्षिसरीसृपस्थावर-निमित्तम्[17]। आधिदैविकं तु दिवमधिकृत्य यत् प्रवर्तते शीतोष्णवातवर्षा-दिकम्[18]।

वस्तुतः किसी पुरुष का न तो बन्धन, न जन्म-मरण और न मोक्ष होता है। अनेक पुरुषों के आश्रय से रहने वाली **प्रकृति** का ही बन्धन, जन्म-मरण और मोक्ष होता है। जैसे सेवक की जय-पराजय स्वामी पर आरोपित होता है, क्योंकि स्वामी का आश्रय लेकर ही सेवक कार्य करता है तथा उस कार्य का फल सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि भी स्वामी को ही प्राप्त होता है। वैसे ही भोग और अपवर्ग प्रकृति का होने पर भी ज्ञान के अभाव में पुरुष पर आरोपित हो जाता है। इस प्रकार कर्म का कर्ता अव्यक्त है।

कर्मफल

सुख और दुःख का भोग **कर्मफल** है। दुःख तीन प्रकार के हैं- आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। **आध्यात्मिक** दुःख दो प्रकार का है - शारीरिक एवं मानसिक । वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न दुःख **शारीरिक** है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या तथा विषाद से एवं शब्द, स्पर्श आदि विषय की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख **मानसिक** है। ये सभी दुःख आन्तरिक उपायों से दूर होने के कारण **आध्यात्मिक** हैं। बाह्य उपायों से दूर होने वाले दुःख दो प्रकार के हैं- **आधिभौतिक** और **आधिदैविक**। मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सर्प आदि तथा वृक्ष, लता आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख **आधिभौतिक** है। आकाश (अन्तरिक्ष) में होने वाली सर्दी, गर्मी, वर्षा, आन्धी आदि की अधिकता से उत्पन्न दुःख **आधिदैविक** है।

स्वर्गश्च–

> **यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम्।**
> **अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्॥**

दुःखविरोधी सुखविशेषश्च स्वर्गः। स च स्वशक्त्या समूलघातमपहन्ति दुःखम्[19] **।**

> **तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।**
> **लिङ्गस्याविनिवृत्तेस्तस्माद् दुःखं स्वभावेन**[20] **॥**

तत्र शरीरादौ यद्यपि विविधा विचित्रानन्दभोगभागिनः प्राणभृद्भेदाः, तथापि सर्वेषां जरामरणकृतं दुःखमविशिष्टम्। सर्वस्य खलु कृमेरपि मरणत्रासौ – 'मा न भूवम्' 'भूयासम्' इत्येवमात्मकोऽस्ति। दुःखं च भयहेतुरिति दुःखं मरणम्[21] **।**

जो दुःख से रहित हो, जो बाद में भी कभी **ग्रस्त*** न हो अर्थात् जिसका कभी नाश न हो, इच्छा मात्र से जिसकी प्राप्ति हो जाय वही सुख **स्वर्ग** है। दूसरे शब्दों में, दुःख का विरोधी सुखविशेष **स्वर्ग** है।

* **अमृतत्वाभिधानं चिरस्थेमानमुपलक्षयति।** सां.त.कौ. 2

क्षयित्वं च स्वर्गादेः सत्त्वे सति कार्यत्वादनुमितम्। वही

स्वर्गिणः पातभयादिजन्यदुःखावश्यभावाच्च। सा. बो. 2

यहाँ नाश न होने से तात्पर्य है सुदीर्घ काल तक रहना। अन्ततः स्वर्ग भी विनाशशील है एवं विनाश के अनन्तर दुःख का होना निश्चित है।

सूक्ष्म शरीर के बने रहने से चेतन पुरुष जरा-मरण से उत्पन्न दुःख का अनुभव करता रहता है। अतएव दुःख **स्वाभाविक** है। तात्पर्य यह है कि अनेक प्रकार के सुखों को भोगने वाले प्राणधारी जीव अनेक हैं, तथापि बुढ़ापा और मृत्यु से उत्पन्न दुःख का सभी समान रूप से अनुभव करते हैं। सभी प्राणियों को, यहाँ तक कि कृमि (कीड़ों) को भी, **मैं न रहूँ ऐसा न हो, मैं हमेशा जीवित रहूँ** इस प्रकार का मृत्युसम्बन्धी भय बना रहता है। अतः **मरण** ही दुःख है।

कर्मफलदाता

अनियतो विपाकानां जात्यायुर्भोगानां कालो यस्य कर्माशयस्य सः[22]। क्लेशा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशास्ते एव सलिलानि तैरभिसिक्तायां बुद्धिभूमौ कर्माणि धर्माधर्मरूपाणि बीजानि भोगादिरूपमङ्कुरं प्रसुवते जनयन्ति[23]।

बन्धनम्

विपर्ययाद् अतत्त्वज्ञानात् इष्यते बन्धः। स च त्रिविधः - प्राकृतिको वैकृतिको दाक्षिणकश्चेति। तत्र प्रकृतावात्मज्ञानाद्ये प्रकृतिमुपासते तेषां प्राकृतिको बन्धः[24]। वैकारिको बन्धस्तेषां ये विकारानेव भूतेन्द्रिया-हङ्कारबुद्धीः पुरुषधियोपासते[25]।

कर्मफलदाता

कर्माशय का परिपक्व होना **विपाक** है जो अनादि काल से जाति, आयु एवं भोगरूप फल को उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश- ये पाँच क्लेश हैं जो सलिल के नाम से जाने जाते हैं। इन क्लेशों के द्वारा बुद्धि में कर्मफल उत्पन्न करने की योग्यता आ जाती है। इस प्रकार की बुद्धि में ही **धर्म एवं अधर्मरूप कर्मबीज** स्थित होकर सुख एवं दुःख रूप भोग को उत्पन्न करते रहते हैं।

बन्धन

विपर्यय से अर्थात् तत्त्वज्ञान के अभाव से **बन्धन** होता है। वह बन्धन प्राकृतिक, वैकृतिक तथा दाक्षिणक भेद से तीन प्रकार का है। **प्राकृतिक बन्धन** वह है, जहाँ प्रकृति को पुरुष मानकर व्यवहार किया जाता है। **वैकृतिक बन्धन** वह है जहाँ प्रकृति के परिणामभूत (स्थूल और सूक्ष्म), इन्द्रिय, अहङ्कार और बुद्धि आदि में पुरुष भाव होता है तथा उसके आधार पर व्यवहार सम्पन्न किया जाता है।

इष्टापूर्तेन दाक्षिणकः। पुरुषतत्त्वानभिज्ञो हीष्टापूर्तकारी कामोपहतमना बध्यत इति[26]। वाङ्मात्रं न तु तत्त्वम्, चित्तस्थितेः[27]। बन्धादीनां सर्वेषां चित्त एवावस्थानात् पुरुषे बन्धादिवाङ्मात्रं स्फटिकलौहित्यवत्, न तु तत्त्वमनारोपितं जपालौहित्यवदित्यर्थः। उक्तञ्च-

बन्धमोक्षौ सुखं दुःखं मोहापत्तिश्च मायया।
स्वप्ने यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी॥

मायाख्यप्रकृत्यौपाधिकीत्यर्थः[28]। **न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः**[29] ।

इष्ट और आपूर्त कर्मों से **दाक्षिणक बन्धन** होता है। पुरुष तत्त्व को नहीं जानने वाला तथा स्वर्ग आदि कामना से **इष्टापूर्त*** कर्म करने वाला व्यक्ति जिस बन्धन में पड़ता है, वह **दाक्षिणक बन्धन** है।

* **इष्टं च पूर्तं चानयोः समाहारः इष्टापूर्तम्।**

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥ वा.

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेद की रक्षा, अतिथि की पूजा और बलिवैश्वदेव को सम्मिलित रूप में इष्ट कहा गया है।

वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते॥ वा.

वापी, कूप, तडाग आदि; देवमन्दिर, वाटिका आदि का निर्माण तथा अन्नदान पूर्त है।

पुरुष में बन्धन केवल आरोप मात्र है, वास्तविक नहीं। सभी बन्धनों का आधार बुद्धि है। वह बन्धन स्फटिक में आरोपित लाल रंग के समान है, लाल रंग वाली जपा फूल के समान नहीं । इसी को इस प्रकार कहा गया है-

जिस प्रकार स्वप्न में किसी भी प्रकार का अनुभव वास्तविक न होकर काल्पनिक होता है उसी प्रकार पुरुष पर प्रकृति के द्वारा आरोपित बन्धन, कैवल्य, सुख-दुःख तथा मोह वास्तविक न होकर काल्पनिक होता है।

प्रकृति का दूसरा नाम **माया** है तथा वही **उपाधि** है। स्वभाव से ही बद्ध पुरुष के लिये कैवल्य प्राप्त करने के साधन उपदेश आदि का होना सम्भव नहीं है। अतः पुरुष बन्धन से युक्त नहीं है।

दुःखात्यन्तनिवृत्तेर्मोक्षत्वस्योक्तवाद् बन्धो दुःखयोगः । स च पुरुषे

न स्वाभाविकः[30]। न ह्यग्नेः स्वाभाविकादौष्ण्यान्मोक्षः सम्भवति, स्वाभाविकस्य यावद् द्रव्यभावित्वादिति भावः । उक्तं चेश्वरगीतायाम्-

यद्यात्ममलिनोऽस्वच्छो विकारी स्यात् स्वभावतः।
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि[31]॥

स्वभावनाशात् स्वरूपनाशप्रसङ्गात्। उक्तञ्च-

वस्तुस्थित्या न बन्धोऽस्ति तदभावान्न मुक्तता।
विकल्पघटितावेतावुभावपि न किञ्चन[32]॥

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणप्रामाण्यम्[33]। न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्। न देशयोगतोऽप्यस्मात्। नावस्थातो देहधर्मत्वात् तस्याः[34] ।

कैवल्य की अवस्था में दुःख का हमेशा के लिये नाश हो जाने के कारण यह सिद्ध होता है कि दुःख का संयोग **बन्धन** है। वह दुःख पुरुष में स्वाभाविक नहीं है। उष्णता अग्नि का स्वाभाविक धर्म है जो उससे कभी अलग नहीं हो सकती, क्योंकि द्रव्य का भाव ही उसका स्वाभाविक धर्म होता है। जैसा कि ईश्वर गीता में कहा गया है-

यदि पुरुष स्वभाव से ही मलिन, अस्वच्छ तथा विकारी होता तो उसका सौ जन्मों के द्वारा भी मुक्त अर्थात् मलिनता रहित, स्वच्छ तथा अविकारी होना सम्भव नहीं है।

स्वभाव के नष्ट होने से उस वस्तु के अस्तित्व का नाश होना निश्चित है। जैसा कि कहा गया है-

वस्तु का अपना जो स्वरूप है उससे बन्धन नहीं होता तथा उसके अभाव से मुक्ति भी नहीं होती। बन्धन और मुक्ति दोनों कल्पना मात्र है।

जो जिसका स्वभाव होता है, वह उस वस्तु के रहने तक रहता है। अतः बन्धन के स्वाभविक होने से कैवल्य का प्रयास करना व्यर्थ हो जाएगा। किसी काल में मुक्त पुरुष बन्धन से युक्त हुआ, ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि काल व्यापी एवं नित्य है और यदि ऐसे काल के द्वारा पुरुष का

बन्धन होगा तो बन्धन की सत्ता हमेशा बनी रहेगी, कभी भी कोई बन्धन से युक्त पुरुष **मुक्त** नहीं हो सकेगा। किसी देश के संयोग से पुरुष बन्धन से युक्त है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि देश भी व्यापी एवं नित्य है। अत: हमेशा बन्धन के रहने से कोई मुक्त नहीं हो सकेगा। देह की अवस्था विशेष से पुरुष बन्धन से युक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अवस्था देह का धर्म है।

न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च। विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे[35]। न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते[36]। अथ यत्परतन्त्रा प्रकृतिर्बन्धकारणं तस्मादेव संयोगविशेषादौपाधिको बन्धोऽग्निसंयोगाज्जलौष्ण्यवदिति[37]। यदि बन्धः प्रकृतिसंयोगजन्यः स्यात्तर्हि पाकजरूपमग्निसंयोगवियोग इव प्रकृतिवियोगेऽप्यनुवर्तेत। अतश्च प्रकृतिवियोगे बन्धाभावादौपाधिक एव बन्धो न तु स्वाभाविको नैमित्तिको वेति सिद्धान्तरहस्यम्[38]।

कैवल्यम्

तावदेव प्रकृतिर्भोगमारभते न यावद्विवेकख्यातिं करोति। अथ विवकेख्यातौ सत्यां कृतकृत्यतया विवेकख्यातिमन्तं पुरुषं प्रति निवर्तते। यदाहुः-

विवकेख्यातिपर्यन्तं ज्ञेयं प्रकृतिचेष्टितम्[39]।

पुरुष कर्म के द्वारा बन्धन युक्त नहीं हो सकता क्योंकि कर्म जड़ पदार्थों का धर्म है तथा उससे पुरुष के लक्षण में दोष उपस्थित हो जायेगा।

भोग की विविधता की सिद्धि के लिए बन्धन पुरुष का है यह मानना आवश्यक है। किन्तु यह बन्धन बुद्धि में प्रतिबिम्बित पुरुष का है, शुद्ध पुरुष का नहीं। नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव पुरुष का बन्धन प्रकृति के विना नहीं हो सकता। बन्धन का कारण **परतन्त्र प्रकृति** है, जिसके संयोग से औपाधिक बन्धन है, वैसे ही, जैसे स्वभाव से शीतल होता हुआ जल अग्नि के संयोग से उष्णता को प्राप्त कर लेता है। यदि बन्धन प्रकृतिसंयोग से उत्पन्न होता तो जैसे अग्निसंयोग से पके हुए घड़े का रङ्ग अग्नि के समाप्त

हो जाने पर भी बना रहता है उसी प्रकार प्रकृति के अलग हो जाने पर बन्धन बना रहता। ऐसा नहीं होता है क्योंकि प्रकृति के अलग हो जाने से बन्धन का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि बन्धन न तो पुरुष का स्वाभाविक धर्म है, न अग्नि से उत्पन्न पाकजन्य रूप की तरह नैमित्तिक, किन्तु प्रकृतिरूप उपाधि से उत्पन्न होने के कारण औपाधिक है।

कैवल्य

प्रकृति तभी तक पुरुष के लिये भोग उत्पन्न करती है, जब तक पुरुष में विवेक-ज्ञान उत्पन्न नहीं कर देती। विवेकज्ञान उत्पन्न होने पर प्रकृति के प्रयोजन सिद्ध हो जाने से वह विवेकज्ञान सम्पन्न पुरुष से निवृत्त हो जाती है। जैसे कि कहा गया है- 'प्रकृति का व्यापार तभी तक चलता है जब तक पुरुष विवकेख्याति से सम्पन्न नहीं हो जाता'।

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्।
अविपर्ययादि्वशुद्धं कैवल्यमुत्पद्यते ज्ञानम्[40] ॥
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति[41] ।

'ऐकान्तिकम्' अवश्यम्भावि 'आत्यन्तिकम्' अविनाशि 'इत्युभयं कैवल्यं' दुःखत्रयविगमं प्राप्नोति पुरुषः[42] । 'नास्मि' इत्यात्मनि क्रियामात्रं निषेधति[43] । चाध्यवसायाभिमानसङ्कल्पालोचनानि चान्तराणि बाह्याश्च सर्वे व्यापारा आत्मनि प्रतिषिद्धानि बोद्धव्यानि[44] । 'न मे'- कर्ता हि स्वामितां लभते, कुतः स्वाभाविकी स्वामितेत्यर्थः । अथवा 'नास्मि' इति 'पुरुषोऽस्मि न प्रसवधर्मा'। अप्रसवधर्मित्वाच्चाकर्तृत्वमाह 'नाहम्' इति। अकर्तृत्वाच्च न स्वामितेत्याह 'न मे' इति[45] । नास्ति किञ्चिदस्मिन् परिशिष्टं ज्ञातव्यं यदज्ञानं बन्धयिष्यतीत्यर्थः[46] ।

ऐसा होने पर पुरुष में **न मैं हूँ, न मेरा है और न मैं** - यह मिथ्याज्ञान से रहित विशुद्ध **कैवल्य** ज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार पुरुष **ऐकान्तिक** और **आत्यन्तिक** रूप कैवल्य को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि पुरुष ऐकान्तिक अर्थात् निश्चितरूप से तथा आत्यन्तिक अर्थात् हमेशा के लिए आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःख से निवृत्त हो जाता है। **मैं**

नहीं हूँ - यह वाक्य पुरुष में सभी प्रकार की क्रिया का निषेध करता है। बुद्धि के द्वारा किया गया अध्यवसाय, अहङ्कार के द्वारा किया गया अभिमान, मन के द्वारा किया गया सङ्कल्प तथा इन्द्रिय के द्वारा किया गया विषयग्रहण सभी आन्तरिक एवं बोलना, पकड़ना, चलना आदि बाह्य क्रिया से पुरुष रहित हो जाता है। **न मे** अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं है इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष का स्वाभाविक स्वामित्व नहीं हो सकता। अथवा **नास्मि** का अर्थ यह है कि **मैं पुरुष हूँ** परिणामी नहीं और अपरिणामी होने से **नाहम्** के द्वारा उसका अकर्तृत्व है, एवं अकर्तृत्व के कारण **न मे** के द्वारा पुरुष में स्वामित्व का अभाव सिद्ध होता है। आशय यह है कि तत्त्वज्ञान हो जाने पर कुछ भी जानने योग्य नहीं रहता जो प्राणियों को पुनः बन्धन से युक्त कर सके।

कैवल्यसाधनम्

ज्ञानेन चापवर्गः[47] ।

> **रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः।**
> **सैव च पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण**[48]॥

उक्तप्रकारतत्त्वविषयज्ञानाभ्यासादादरनैरन्तर्यदीर्घकालसेवितात् सत्त्व-पुरुषान्यतासाक्षात्कारि ज्ञानमुत्पद्यते, यद्विषयश्चाभ्यासस्तद्विषयकमेव साक्षात्कारमुपजनयति तत्त्वविषयश्चाभ्यास इति तत्त्वसाक्षात्कारं जनयति[49]। **प्रधानेन सम्भिन्नः पुरुषस्तद्गतं दुःखत्रयं स्वात्मन्यभिमन्यमानः कैवल्यं प्रार्थयते**[50]। **आनुश्रविको हि वेदविहितत्वान्मात्रया दुःखापघातकत्वाच्च प्रशस्यः। सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययोऽपि प्रशस्यः। तदनयोः प्रशस्ययोर्मध्ये सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययः श्रेयान्**[51]। **व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्**[52]।

कैवल्यसाधन

तत्त्वज्ञान से **अपवर्ग** होता है। वस्तुतः भोग और अपवर्ग के लिये प्रकृति स्वयं सात भावों (धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य तथा अनैश्वर्य) के द्वारा अपने को बांधती है तथा स्वयं के अर्थात् अपने ज्ञानरूप एक भाव के द्वारा स्वयं को बन्धनमुक्त करती है। पूर्वोक्त प्रकार के तत्त्व

विषयक ज्ञान का श्रद्धा पूर्वक दीर्घ काल तक लगातार अभ्यास करने से 'पुरुष प्रकृति से भिन्न है' – ऐसा विवेकज्ञान उत्पन्न होता है। जिसके विषय में अभ्यास किया जाता है, वह उसी का साक्षात्कार उत्पन्न करता है, अतः तत्त्व के विषय में होने वाला अभ्यास उसी के साक्षात्कार का कारण बनता है। प्रकृति के साथ संयुक्त हुआ पुरुष उसके विविध दुःख परिणाम को अपने में स्थित समझता हुआ कैवल्य की इच्छा करता है। वैदिक कर्म वेदविहित तथा अंशतः **दुःखनाशक** होने के कारण युक्त है, और प्रकृति तथा पुरुष का साक्षात्कार कराने वाला **विवेकज्ञान** भी युक्त है। परन्तु इन दोनों में प्रकृति तथा पुरुष का **विवेकज्ञान** अधिक युक्त है, क्योंकि इससे व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञ का विज्ञान होता है तथा ऐकान्तिक और आत्यन्तिक रूप से दुःख की निवृत्ति होती है।

सन्दर्भ

1. सां.का. 13
2. सां.त.कौ. 13
3. वही
4. यु. दी. 13
5. सां.त.कौ. 13
6. मा. वृ. 16
7. वही
8. सां.का. 9
9. वही 57
10. सां.त.कौ. 56
11. सां.का. 56
12. सां.त.कौ. 56
13. सां.का. 58-59
14. वही 62
15. सां.त.कौ. 62
16. वही 37
17. वही1
18. म. वृ. 1
19. सां.त.कौ. 1

20. सां.का. 55
21. सां.त.कौ. 55
22. सां. त. वि. 67
23. वही
24. सां.त.कौ. 44
25. वही
26. सां.त.कौ. 44
27. सा. सू. I. 58
28. सां. सू. वृ. सा. I. 58
29. सां. सू. I. 7
30. सां. सू. वृ. सा. I. 7
31. सां. सू. वृ. सा. I. 7
32. सां. सू. वृ. I. 7
33. सा. सू. I. 8
34. वही I. 12–14
35. वही I.16–17
36. सा. सू. I.19
37. सां. सू. वृ. सा. I.19
38. वही
39. सां.त.कौ. 44
40. सां. का. 64
41. वही 68
42. सां.त.कौ. 68
43. वही 64
44. वही
45. वही
46. वही
47. सां.का. 44
48. वही 63
49. सां.त.कौ. 64
50. वही 21
51. वही 2
52. सां.का. 2

पारिभाषिक शब्दकोश

शब्द	व्याख्या
अध्यवसाय	बुद्धि का व्यापार या परिणामरूपज्ञान अध्यवसाय है। दूसरे शब्दों में, इन्द्रियों के द्वारा घट, पट आदि विषयों के आकार को बुद्धिव्यापार से प्राप्त कर लेने पर बुद्धि में तमोगुण की कमी के साथ-साथ सत्त्वगुण की अधिकता अध्यवसाय है। अध्यवसाय बुद्धि का धर्म है।
अनुमान	अनुमान लिङ्ग तथा लिङ्गी ज्ञान पूर्वक होता है। व्याप्य-व्यापक-भावज्ञान तथा पक्षधर्मताज्ञान पूर्वक अनुमान होता है।
(i) वीत	अन्वय व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर वह्नि आदि व्यापक की पर्वत आदि पक्ष में सत्ता सिद्ध करने वाला अनुमान वीत है।
(a) पूर्ववत्	जिसका विषय वस्तु का सामान्य रूप होता है तथा जिसका विशिष्ट रूप पहले दृष्ट रहता है, वह पूर्ववत् है। 'पूर्व' का अर्थ है प्रसिद्ध अर्थात् वस्तु का सामान्य रूप, जिसके विशिष्ट का पहले प्रत्यक्ष हो चुका है। ऐसा 'सामान्य' जिस अनुमान का विषय हो, वह पूर्ववत् अनुमान है। जैसे धूम के द्वारा 'वह्नित्व' रूप सामान्य धर्म से युक्त विशेषरूप अर्थात् पर्वतीय वह्नि का अनुमान होना, जिसका वह्निविशेषरूप रसोई में पहले देखा जा चुका है।
(b) सामान्यतोदृष्ट	जिसका विषय सामान्य वस्तु है तथा जिसका अपना असाधारण या विशिष्टरूप पहले न देखा गया हो,

वह सामान्यतोदृष्ट है, जैसे इन्द्रियविषयक अनुमान। रूप, रस आदि का विज्ञान जिस क्रिया के द्वारा होता है उस का असाधारण कारण होने से इन्द्रिय का अनुमान होता है। अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि भी 'सामान्यतोदृष्ट' अनुमान से होती है।

(ii) अवीत व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर व्यापक के निषेध द्वारा व्याप्य का पक्ष में निषेध करने वाला अनुमान अवीत है। अवीत का दूसरा नाम शेषवत् है। जो बच जाए वह शेष है। वही जिस अनुमानरूप ज्ञान का विषय हो, वह शेषवत् अनुमान है।

अनुयोगिन्-प्रतियोगिन् नव्यन्याय में सम्बन्ध को सप्रतियोगिक पदार्थ कहा गया है अर्थात् सम्बन्ध का एक प्रतियोगिन् और एक अनुयोगिन् होता है। जो पदार्थ जिस सम्बन्ध से कहीं रहता है वह उस सम्बन्ध का प्रतियोगिन् और उसी सम्बन्ध से जहाँ रहता है वह उस सम्बन्ध का अनुयोगिन् है। यहाँ कर्ता और क्रिया के बीच सम्बन्ध का 'कर्ता' अनुयोगिन् तथा 'क्रिया' प्रतियोगिन् है।

अन्तःकरण अन्तःकरण तीन हैं - बुद्धि, अहङ्कार तथा मन। ये शरीर के अन्तर्गत होने के कारण अन्तःकरण हैं।

(i) बुद्धि महत् बुद्धि है। अध्यवसाय बुद्धि का धर्म है। चेतन पुरुष के संयोग से चैतन्य को प्राप्त एवं निश्चयात्मिका वृत्ति से सम्पन्न तत्त्व महत् है। बुद्धि सात्त्विक एवं तामस के भेद से आठ प्रकार का है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इसके सात्त्विक रूप हैं। इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य इसके तामस रूप हैं।

(ii) मनस् यह सङ्कल्पात्मक है और इन्द्रियों के सजातीय होने से इन्द्रिय भी है। गुणों के विशिष्ट परिणाम के कारण जैसे विविध बाह्य पदार्थ अभिव्यक्त होते हैं,

वैसे ही विविध इन्द्रियाँ भी अभिव्यक्त होती हैं। ग्यारह इन्द्रियों में मन दोनों ही प्रकार का अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय है, क्योंकि मन से ही संयुक्त होकर चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होती हैं।

(iii) **अहङ्कार** — 'मैं' इस प्रकार का अभिमान अहङ्कार है। दूसरे शब्दों में, आलोचित और सङ्कल्पित विषय में 'मैं ही अधिकृत हूँ', 'मैं ही इसे करने में समर्थ हूँ', 'ये विषय मेरे लिये ही हैं', 'मेरे अतिरिक्त अन्य कोई इसमें अधिकृत नहीं है', अतः 'मैं ही हूँ' - इस प्रकार का यह अभिमान असाधारण व्यापार होने के कारण अहङ्कार है।

अपवर्ग — साङ्ख्य में अपवर्ग कैवल्य का पर्याय है। तत्त्वज्ञान से अपवर्ग होता है।

अवच्छेदक — पदार्थ में रहनेवाला वह धर्म है जो उसके स्वरूप को यथावत् प्रस्तुत करता है, न कम और न अधिक। जैसे घट में रहने वाला नित्य धर्म 'घटत्व' अवच्छेदक है, क्योंकि वह उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करता है, उसके अस्तित्व का परिचायक है। अवच्छेदक चार हैं- धर्म, सम्बन्ध, देश और काल। इन अवच्छेदकों के द्वारा पदार्थ का आहृत धर्म अवच्छिन्न होता है। आहृत धर्म किसी भी पदार्थ का तात्कालिक एवं परिवर्तनशील धर्म है जो परिस्थिति के अनुसार उपस्थित होकर उसके स्वरूप को प्रभावित करता है।

अविकृति — किसी अन्य कारण से आविर्भूत न होने से प्रकृति अविकृति है।

अव्यक्त — व्यक्तरूप सुख-दुःख-मोहात्मक महत् आदि कार्यों का सुख-दुःख-मोहात्मक कारण प्रधान अव्यक्त है।

अशक्ति ग्यारह इन्द्रियदोष, नौ तुष्टिविपर्ययदोष तथा आठ सिद्धिविपर्ययदोष-ये सभी मिलकर अट्ठाईस भेदवाली अशक्ति है।

आप्तवचन आप्तपुरुष से उच्चरित वाक्य द्वारा उत्पन्न यथार्थ ज्ञान आप्तवचन है।

आप्तश्रुति आप्तश्रुति का अर्थ है आप्त रूप श्रुति। वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थ ज्ञान श्रुति है।

इन्द्रिय इन्द्र अर्थात् पुरुष के लिङ्ग होने के कारण चक्षु आदि इन्द्रियाँ कहलाती हैं। 'इन्' यह विषयों का नाम है, उन विषयों की ओर जो अभिमुख हों वे इन्द्रियाँ हैं।

(i) बुद्धीन्द्रिय बुद्धि द्वारा शब्द आदि बाह्य विषयों के ज्ञान में साधन होने से यह बुद्धीन्द्रिय है। रूप के ज्ञान का साधन चक्षु है। शब्द के ज्ञान का साधन कर्ण है। गन्ध के ज्ञान का साधन नासिका है। रस के ज्ञान का साधन जिह्वा है। स्पर्श के ज्ञान का साधन त्वचा है।

(ii) कर्मेन्द्रिय कार्य करने के कारण वाक् आदि कर्मेन्द्रिय हैं। वाक् बोलने का कार्य करती है। हाथ विविध प्रकार के व्यापार करते हैं। पाद विषम, सम, निम्न एवं उन्नत भूमि पर चलने का कार्य करते हैं। पायु ठीक से खाये- पीये हुए अन्न-जल सम्बन्धी मल का परित्याग करता है। उपस्थ आनन्द प्रदान करने अर्थात् पुत्र आदि को उत्पन्न करने का कार्य करता है।

इन्द्रियवध ग्यारह इन्द्रियों के दोष इन्द्रियवध हैं। ये दोष हैं - बहरापन, स्पर्शग्रहण का असामर्थ्य, अन्धापन, रसग्रहण का असामर्थ्य, गन्धग्रहण का असामर्थ्य, गूँगापन, हाथ का असामर्थ्य, पाद का असामर्थ्य, नपुंसकता, गुदा का दोष तथा मन का असामर्थ्य।

इष्टापूर्त अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेद की रक्षा, अतिथि की पूजा

और बलिवैश्वदेव को सम्मिलित रूप में इष्ट कहा गया है। वापी, कूप, तडाग आदि; देवमन्दिर, वाटिका आदि का निर्माण तथा अन्नदान पूर्त है।

उपस्तम्भ उपस्तम्भ का अर्थ प्रयत्न या क्रिया है। वह रजोगुण का स्वभाव है। क्रिया के दो प्रकार हैं – परिणामलक्षण एवं प्रस्पन्दलक्षण।

(i) परिणामलक्षण सहयोगी कारणों के द्वारा अपने पहले वाले स्वरूप को त्याग कर दूसरे स्वरूप को प्राप्त करना परिणामलक्षण है।

(ii) प्रस्पन्दलक्षण प्राण आदि पाँच वायु तथा वाक् आदि कर्मोन्द्रियों की वचन आदि क्रिया प्रस्पन्दलक्षण है। बाह्य द्रव्यों का ऊपर की ओर जाना, नीचे की ओर आना, घूमना–फिरना आदि भी इसके उदाहरण हैं।

उपाधि जो धर्म साध्य का व्यापक तथा साधन का अव्यापक हो, वह उपाधि है। साध्य के व्यापक होने का तात्पर्य है– जहाँ–जहाँ साध्य हो, वहाँ–वहाँ नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित हो। साधन के अव्यापक होने का तात्पर्य हैं– जहाँ–जहाँ साधन हो, वहाँ–वहाँ सर्वत्र नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित न हो। यह उपाधि दो प्रकार का है–

(i) शङ्कित उपाधि 'वह काला है, मैत्री का पुत्र होने के करण'– यहाँ 'शाक परिणाम से उत्पन्न' उपाधि है, क्योंकि 'जहाँ–जहाँ कालापन है, वहाँ–वहाँ वह कालापन शाक के परिणाम से उत्पन्न है' इस स्थल पर 'शाक परिणाम से उत्पन्न' साध्य 'कालापन' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ–जहाँ 'कालापन' है वहाँ–वहाँ 'शाक के परिणाम से वह कालापन उत्पन्न है' नियमपूर्वक उपस्थित होता है। लेकिन 'जहाँ–जहाँ मैत्री का पुत्र है वहाँ–वहाँ शाक के परिणाम से अवश्य ही उत्पन्न है ऐसा नहीं है'।

यहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' साधन 'मैत्री के पुत्र' का अव्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ 'मैत्री का पुत्र' हो, वहाँ-वहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' नियम पूर्वक हो यह निश्चित नहीं है। इस प्रकार साध्य 'कालापन' का व्यापक तथा साधन 'मैत्री का पुत्र' का अव्यापक होने से 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' उपाधि रूप धर्म है। यहाँ शाक के परिणाम से उत्पन्न' शङ्कित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि जहाँ पर साधनव्यापकत्व का अथवा साध्यव्यापकत्व का अथवा दोनो का सन्देह हो, वहाँ पर हेतु में संशय होने से उपाधि सन्दिग्ध होता है। यहाँ साधन 'मैत्री का पुत्र' के प्रति 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' रूप उपाधि की अव्यापकता में सन्देह रहने से अर्थात् प्रत्यक्ष आदि से सिद्ध न होने से वह शङ्कित उपाधि है।

(ii) समारोपित उपाधि 'पर्वत धूमवाला है, आग से युक्त होने के कारण'- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधि है, क्योंकि 'जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है'- इस स्थल पर 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साध्य 'धूम' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है' नियमपूर्वक उपस्थित रहता है। लेकिन 'जहाँ-जहाँ आग है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ निश्चित रूप से संयोग है' ऐसा नहीं है- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साधन 'आग' का अव्यापक है। इस प्रकार साध्य 'धूम' का व्यापक तथा साधन 'आग' का अव्यापक होने से 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधि रूप धर्म है। यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के

साथ संयोग' समारोपित अर्थात् निश्चित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि इसकी उपलब्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चित हो जाती है।

ऐश्वर्य — ईश्वर (स्वामी) का भाव ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य आठ हैं।

(i) अणिमा — अणिमा अणुभाव (सूक्ष्मता) है, जिससे साधक शिला में प्रवेश करता है।

(ii) लघिमा — लघिमा लघुता (हल्कापन) है, जिससे साधक सूर्य की किरणों के सहारे सूर्य-लोक में पहुँचता है।

(iii) गरिमा — गरिमा गुरुता (भारीपन) है, जिससे साधक भारी होता है।

(iv) महिमा — महिमा महत्त्व है, जिससे साधक महत् परिमाण को प्राप्त होता है।

(v) प्राप्ति — प्राप्ति वह है, जिससे साधक अङ्गुलि के अग्र भाग से चन्द्रमा को स्पर्श करता है।

(vi) प्राकाम्य — प्राकाम्य इच्छा की बाधा रहित पूर्ति है, जिससे साधक जल के समान पृथ्वी के अन्दर से ऊपर निकल कर फिर उसी में प्रवेश करता है।

(vii) वशित्व — वशित्व वह है जिससे पृथ्वी आदि भूत तथा उससे उत्पन्न घट, पट, आदि भौतिक पदार्थ निश्चित रूप से साधक के अधीन होते हैं।

(viii) ईशित्व — ईशित्व वह है, जिससे साधक सभी भूतों तथा भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और नाश में समर्थ होता है। इसी का दूसरा नाम कामावसायित्व है जिसका अर्थ सत्यसङ्कल्पता है, जिससे साधक अभिलाषा मात्र से किसी भी वस्तु से अभीष्ट वस्तु बना लेता है।

करण — ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा मन), बुद्धि तथा अहङ्कार–ये तेरह प्रकार के करण हैं।

करणाश्रयी साङ्ख्य दर्शन में बुद्धि करण है। इस करण के आश्रय में रहने के कारण धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य एवं अनैश्वर्य करणाश्रयी हैं।

कर्मकर्ता जिस प्रकार ओदन का इच्छुक व्यक्ति चावल पकाने के लिए प्रवृत्त होता है और चावल के पक जाने पर उस क्रिया से निवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक पुरुष के कैवल्य के लिए प्रवृत्त हुई प्रकृति जिस पुरुष को मुक्ति प्राप्त करा देती है, उसके विषय में पुन: कभी प्रवृत्त नहीं होती। यहाँ प्रवृत्त रूप कर्म का कर्ता प्रकृति या अव्यक्त है।

कर्मफल सुख और दु:ख का भोग कर्मफल है।

कल्प भारतीय काल गणना के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन 'कल्प' कहलाता है। ऐसे तीस कल्पों को मिलाकर ब्रह्मा का एक मास होता है। ये तीस कल्प इस प्रकार हैं– 1. श्वेतवाराह 2. नीललोहित 3. वामदेव 4. गाथान्तर 5. रौरव 6. प्राण 7. बृहत्कल्प 8. कन्दर्प 9. सत्य 10. ईशान 11. ध्यान 12. सारस्वत 13. उदान 14. गरुड़ 15. कौर्म्म (यह ब्रह्म का पौर्णमास या पूर्णिमा है) 16. नारसिंह 17. समाधि 18. आग्नेय 19. विष्णुज 20. सौर 21. सोमकल्प 22. भावन 23. सुप्तमाली 24. वैकुण्ठ 25. आर्च्चिष 26. वल्मीकल्प 27. वैराज 28. गौरीकल्प 29. माहेश्वर 30. पितृकल्प (यह बह्मा की अमावास्या है।) वर्तमान कल्प श्वेतवाराह है।

कारण विशेष से निवृत्ति एवं अविभाग में अवस्थिति कारण है। कारण दो प्रकार के हैं– उपादान कारण एवं निमित्त कारण।

(i) उपादानकारण जहाँ तादात्म्य सम्बन्ध से कार्य की उत्पत्ति होती है, वह उपादान कारण है, जैसे-गन्धरूप कार्य का

पृथिवी, पृथिवीरूप कार्य का तन्मात्र, तन्मात्ररूप कार्य का अहङ्कार, अहङ्काररूप कार्य का महत् तथा महद्रूप कार्य का अव्यक्त उपादान कारण है।

(ii) निमित्तकारण — उपादान कारण से भिन्न निमित्त कारण है, जैसे- घट कार्य की उत्पत्तिमें सहकारी दण्ड, कुलाल आदि निमित्त कारण हैं।

कारणकार्यसिद्धान्त — विभिन्न दार्शनिक शाखाओं में कारण और कार्य के स्वरूप तथा उन दोनों के बीच का सम्बन्ध कारणकार्यसिद्धान्त है। प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

(i) सत्कार्यवाद — कारण व्यापार के पूर्व भी कार्य कारण में विद्यमान रहता है। अविद्यमान होने पर कारण से कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य की उत्पत्ति के लिए उसके उपादान कारण का होना आवश्यक है। कोई भी कार्य किसी निश्चित कारण से ही उत्पन्न होता है। सभी कार्य सभी कारणों से उत्पन्न नहीं होते। जो कारण जिस कार्य को उत्पन्न करने में समर्थ है उससे उसी कार्य की उत्पत्ति होती है। निष्कर्ष रूप से कार्य कारण से अभिन्न है। यह साङ्ख्य का प्रसिद्ध कार्यकारणसिद्धान्त सत्कार्यवाद है।

(ii) असत्कार्यवाद — नैयायिक सत्कारण से असत्कार्य (वास्तविक और नवीन) की उत्पत्ति मानते हैं।

(iii) असत्कारणवाद — शून्यवादी बौद्ध के अनुसार असत्कारण से सत्कार्य उत्पन्न होता है।

(iii) सत्कारणवाद — अद्वैत वेदान्तियों की मान्यता है कि सत्कारण से असत्कार्य (कल्पित) उत्पन्न होता है।

कार्य — सूक्ष्म का स्थूलरूप धारण करना कार्य है।

कार्याश्रयी — कार्य के आश्रय में रहने वाले कलल आदि कार्याश्रयी हैं। शुक्र और शोणित का मिश्रित रूप कलल आदि भाव है। आदि शब्द से बुद्‌बुद, मांसपेशी, करण्ड,

अङ्ग, प्रत्यङ्ग, बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था तथा बृद्धावस्था को लिया गया है। शुक्र का अधोभाव तथा शोणित का ऊर्ध्वभाग में स्थित होना बुद्बुद है। त्वचा आदि के विकास के लिये गर्भ का सघन होना मांसपेशी है। मांसपेशी का और अधिक विकसित होना करण्ड है। शिर, हाथ, पैर आदि अङ्ग हैं। अङ्गुलि आदि प्रत्यङ्ग हैं। यें सभी गर्भ में विकसित होने के कारण गर्भशरीर के भाव हैं। गर्भ से निकलकर शरीर की बाल्यावस्था, कौमारावस्था, यौवनावस्था तथा बृद्धावस्था भी शरीर के भाव हैं। इस प्रकार कलल आदि शरीररूप कार्य के आश्रय में रहने के कारण कार्याश्रयी हैं।

कैवल्य — आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक विनाश कैवल्य है।

कैवल्यसाधन — तत्त्व विषयक ज्ञान का श्रद्धा पूर्वक दीर्घ काल तक लगातार अभ्यास करने से प्रकृति और पुरुष का विवेकज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ तत्त्वज्ञान एवं उसका अभ्यास कैवल्यसाधन है।

गुण — सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये प्रकृति के तीन गुण हैं।

(i) सत्त्वगुण — सत्त्वगुण सुखात्मक तथा प्रकाशात्मक है। जहाँ भी कोई प्रीति करता है वहाँ सरलता, कोमलता, सत्यता, पवित्रता, लज्जा, बुद्धि, क्षमा, दया, ज्ञान आदि को सत्त्वगुण जानना चाहिए।

(ii) रजोगुण — रजोगुण दुःखात्मक तथा प्रवर्तनात्मक है। जहाँ भी कोई अप्रीति करता है, वहाँ द्वेष, द्रोह, ईर्ष्या, निन्दा, स्तब्धता, उत्कण्ठा, शठता, वञ्चकता, बन्धन, वध, शरीर के अवयव की क्षति आदि को रजोगुण समझना चाहिए।

(iii) तमोगुण — तमोगुण मोहात्मक तथा अवरोधात्मक है। जो कोई

भी कहीं मोह को प्राप्त होता है वहाँ अज्ञान, आलस्य, भय, दीनता, अकर्मण्यता, नास्तिकता, विशाद, स्वप्न आदि को तमोगुण समझना चाहिए।

जीवनवृत्ति अन्त:करणों में पञ्च वायु जीवनधारक तत्त्व हैं।

(i) प्राण प्राण वायु नासिका के अग्रभाग, हृदय, नाभि, पाद तथा अङ्गुष्ठ में रहता है। सभी इन्द्रियों के प्राणन करने से इसे प्राण कहते हैं।

(ii) अपान अपान वायु गर्दन के पिछले भाग, पीठ, पाद, मल त्याग करने वाली इन्द्रिय, मूत्र त्याग करने वाली इन्द्रिय एवं पाश्र्वों (पसलियों) में रहता है। नीचे की ओर जाने के कारण वह अपान है।

(iii) समान समान वायु हृदय, नाभि तथा सभी जोड़ों में रहता है।

(iv) उदान उदान वायु हृदय, कण्ठ, तालु, मूर्धा तथा भौंहों के मध्यभाग में रहता है। ऊपर की ओर गमन करने से वह उदान है।

(v) व्यान व्यान वायु त्वचा में रहता है। शरीर में व्याप्त होने से वह व्यान है।

ज्ञ जो विविध प्रकार की गुणवृत्ति को चेतनाशक्ति के द्वारा जानता है वह ज्ञ है तथा वही पुरुष है।

ज्ञान ज्ञान के पर्याय प्रकाश, अवगम, भान आदि हैं।

(i) बाह्यज्ञान शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिषरूप षडङ्ग सहित चार वेद एवं अष्टादश पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र बाह्यज्ञान हैं।

(ii) आभ्यन्तरज्ञान प्रकृति तथा पुरुष का ज्ञान आभ्यन्तर है। बाह्यज्ञान से लोक में अनुराग तथा आभ्यन्तरज्ञान से मोक्ष होता है।

तुष्टि तुष्टि तीसरा प्रत्यय सर्ग है।

(i) आध्यात्मिकतुष्टि शरीर (प्रकृति) और आत्मा (पुरुष) के अन्तर को जानने की इच्छा रखने वाले मनुष्य का शरीर आदि

जड़ तत्त्वों में आत्मबुद्धि होना आध्यात्मिक तुष्टि है। प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य में आत्मबुद्धि होने से ये चार आध्यात्मिक तुष्टि हैं।

(a) प्रकृतितुष्टि — विवेकज्ञान प्रकृति का ही परिणाम विशेष है और उसे प्रकृति ही उत्पन्न करती है, इसलिए आत्मा के ध्यान का अभ्यास व्यर्थ है। अतः 'वत्स! इसी प्रकार रहो' ऐसे उपदेश से शिष्यको प्रकृति विषयक जो तुष्टि होती है वही प्रकृति नामक तुष्टि है।

(b) उपादानतुष्टि — प्रकृति का परिणाम विशेष होकर भी विवेक ज्ञान केवल प्रकृति से नहीं होता, अन्यथा सब के प्रति समान रूप से होने के कारण सभी को सर्वदा विवेक ज्ञान होता रहेगा। इसके विपरीत वह संन्यास से उत्पन्न होता है। इसलिए 'आयुष्मन् ! संन्यास ही ग्रहण करो, तुम्हारा ध्यान का अभ्यास व्यर्थ है' ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह उपादान नामक तुष्टि है।

(c) कालतुष्टि — 'संन्यास भी अपवर्ग देने वाला नहीं है। वह कालान्तर में परिपक्व होकर ही तुम्हें विवेक ज्ञान देगा, तुम्हारे उद्विग्न होने से कोई लाभ नहीं,' ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह काल नामक तृष्टि है।

(d)भाग्यतुष्टि — 'विवेक ज्ञान न प्रकृति से, न काल से और न संन्यास ग्रहण से, अपितु भाग्य से ही होता है। इसलिये भाग्य ही हेतु है, अन्य कुछ नहीं' ऐसे उपदेश से जो तुष्टि होती है, वह भाग्य नामक तुष्टि है।

(ii) बाह्यतुष्टि — शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँच विषय हैं तथा इनसे वैराग्य होना भी पाँच प्रकार का है। अर्जन, रक्षण, क्षय, भोग, हिंसा– इन पाँच प्रकार के दोषों का दर्शन जब विषयों में होता है तब विषयों से

साधक की निवृत्ति ही बाह्य तुष्टि है। पाँच प्रकार के दोष ये हैं-धनवृद्धि का कारण पशुपालन, व्यापार, दानग्रहण, तथा सेवा द्वारा धन के अर्जन में दुःख होना, अर्जित धन के संरक्षण में दुःख होना, उपयोग से धन की कमी होने के कारण दुःख होना, विषय के उपभोग से भी इन्द्रियों के शान्त न होने के कारण दुःख होना तथा उपभोग के लिये प्राणियों की हिंसा से सम्बन्धित दुःख होना।

तन्मात्रा तामस अहङ्कार से आविर्भूत शब्दादि पाँच तन्मात्रायें अविशेष हैं। ये शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र एवं गन्धतन्मात्र हैं।

दर्शन 'दृशिर् दर्शने' धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय होने से 'दर्शन' शब्द निष्पन्न होता है। जिसके द्वारा देखा जाय, वह दर्शन है। यह इसका यौगिक अर्थ है। देखने की क्रिया दो प्रकार से होती है- पहली द्रष्टा के द्वारा एवं दूसरी इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण के द्वारा। द्रष्टा की दर्शन क्रिया से अन्तःकरण का तथा इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण की दर्शन क्रिया से बाह्य एवं आन्तरिक जगत् का ज्ञान होता है। द्रष्टा की दर्शन क्रिया नित्यदृष्टि तथा इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण की दर्शन क्रिया अनित्यदृष्टि है। दोनों प्रकार की दर्शन क्रियाओं से ही इस संसार की किसी भी वस्तु का ज्ञान होता है। इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से द्रष्टा एवं इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण को ही दर्शन कहा जा सकता है, जो कि दर्शन का यौगिक अर्थ है। परन्तु द्रष्टा एवं इन्द्रिय से सम्बद्ध अन्तःकरण के द्वारा दर्शन की क्रिया के बाद उत्पन्न ज्ञान ही अन्य जिज्ञासुओं के लिए शब्दों में निबद्ध किया जाता है। ऐसे शब्दों से निर्मित ग्रन्थों के द्वारा जिज्ञासुजन इस जगत् का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस

दृष्टि से शब्दराशि ग्रन्थ भी दर्शन है। यह दर्शन का रूढ़ अर्थ है। क्योंकि यौगिक अर्थ की अपेक्षा रूढ़ अर्थ प्रधान होता है, अतः 'दर्शन' शब्द 'दर्शनशास्त्र' के अर्थ में ही प्रचलित है। दर्शन के क्षेत्र में मुख्यरूप से तत्त्व के स्वरूप; ज्ञान, ज्ञान के साधन, ज्ञान की प्रामाणिकता आदि तथा आचार के विभिन्न विन्दुओं यथा कर्म, कर्मफल, कर्मस्वातन्त्र्य आदि का विशेष अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र वह विधा है जिसके द्वारा तत्त्व, ज्ञान एवं आचार सम्बन्धी विषयों का अध्ययन कर संसार का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

दुःख — दुःख तीन प्रकार के हैं- आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक।

(i) **आध्यात्मिक** — आन्तरिक उपायों से दूर होने वाले दुःख आध्यात्मिक हैं। ये दुःख दो प्रकार के हैं – शारीरिक एवं मानसिक।

(a) शारीरिक — वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न दुःख शारीरिक है।

(b) मानसिक — काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईष्या तथा विषाद से एवं शब्द, स्पर्श आदि की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख मानसिक है।

(ii) **आधिभौतिक** — मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सर्प आदि तथा वृक्ष, लता आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक है।

(iii) **आधिदैविक** — अन्तरिक्षजन्य सर्दी, गर्मी, वर्षा, आन्धी आदि की अधिकता से उत्पन्न दुःख आधिदैविक है।

दृष्ट — विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय पर आधारित बुद्धिव्यापार या ज्ञान दृष्ट है।

देव — प्रकाशित करने वाले देव हैं। सुर, मेघ तथा राजा के अर्थ में प्रयुक्त 'देव' शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं। इन्द्रिय अर्थ में 'देव' शब्द का प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में होता

है। आचार्य शङ्कर के अनुसार शास्त्रजनित ज्ञान और कर्म से भावित प्राण (इन्द्रियाँ) ही द्योतनशील होने के कारण देव हैं; तथा वही इन्द्रियाँ स्वाभाविक प्रत्यक्ष एवं अनुमान जनित दृष्ट प्रयोजन वाले कर्म और ज्ञान से भावित होने पर असुर हैं। अपने ही असुओं (प्राणों या इन्द्रियों) में रमण करने के कारण अथवा सुर अर्थात् देवों से भिन्न होने के कारण भी ये असुर कहलाते हैं। यास्क के अनुसार जो दान देता है या प्रकाशित करता है या प्रकाशित होता है या द्युलोक अथवा ज्ञानलोक (प्रकाशलोक) में रहता है, वह देव है।

धर्म लौकिक (अभ्युदय) एवं पारलौकिक (निःश्रेयस) सुख का कारण धर्म है।

(i) अभ्युदय यज्ञ, दान आदि के सम्पादन से उत्पन्न धर्म लौकिकसुख अर्थात् अभ्युदय का कारण है।

(ii) निःश्रेयस अष्टाङ्ग योगरूप साधन से उत्पन्न धर्म निःश्रेयस का कारण है।

निर्विकल्पक वस्तुमात्र का बाल, मूक आदि के समान इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न शुद्धज्ञान या आलोचन निर्विकल्पक है।

पक्ष जिसमें साध्य वस्तु का प्रतिपादन किया जाय वह पक्ष है।

पञ्चमहाभूत शब्द आदि पाँच तन्मात्राओं से आकाश आदि पाँच महाभूत अपने से पहले महाभूत के गुणों से सम्बद्ध होने के कारण क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पाँच गुण वाले अभिव्यक्त होते हैं। इनमें गन्धतन्मात्रा से पृथिवी, रसतन्मात्रा से जल, रूपतन्मात्रा से तेज, स्पर्शतन्मात्रा से वायु तथा शब्दतन्मात्रा से आकाश आविर्भूत होते हैं- ये विशेष कहलाते हैं।

पद पद चार प्रकार के हैं – यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ एवं यौगिकरूढ़।

(i) यौगिक पद के अवयवों का अर्थ बोध कराने वाला यौगिक है, जैसे- पाचक आदि। यहाँ 'पच्' धातु का अर्थ 'पाचनक्रिया' एवं 'ति' का अर्थ 'कर्ता' है। इन दोनों अवयवों के अर्थों का बोधक होने से 'पाचक' शब्द यौगिक है

(ii) रूढ़ जहाँ अवयवशक्ति की अपेक्षा के विना समुदायशक्ति के द्वारा अर्थ का बोध होता है वह रूढ़ है, जैसे- गो, मण्डप आदि। गम् धातु से निष्पन्न 'गो' का अवयवों के आधार पर 'गमनशील पदार्थ' अर्थ है। परन्तु यहाँ अवयवों के आधार पर किसी भी गमनशील पदार्थ को अर्थ के रूप में स्वीकार नहीं करते हुए समुदायशक्ति के द्वारा विशिष्ट अर्थ 'गाय' को स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार 'मण्ड (मांड़) को पीने वाला' मण्डप – ऐसा अवयवों के द्वारा निश्चित अर्थ है। यहाँ इस अर्थ को अस्वीकार करते हुए 'किसी शुभ कार्य के लिए निर्मित घर' को समुदायशक्ति के द्वारा विशिष्ट अर्थ के रूप में ग्रहण किया गया है।

(iii) योगरूढ़ जहाँ अवयवशक्ति तथा समुदायशक्ति दोनों के द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है, वह योगरूढ़ है, जैसे- पङ्कज आदि। यहाँ अवयवशक्ति से पङ्क के कर्तृत्व का ज्ञान होता है तथा समुदायशक्ति से कमल का ज्ञान होता है।

(iv) यौगिकरूढ़ जहाँ यौगिक और रूढ दोनों अर्थों का स्वतन्त्रतापूर्वक बोध होता है, वह यौगिकरूढ़ है, जैसे-उद्भिद् आदि। यहाँ उद्भेदन (उगने की क्रिया) का कर्ता वृक्ष, झाड़ी आदि यौगिक अर्थ तथा 'उद्भिद्' याग

विशेष रूढ़ अर्थ है। प्रथम अर्थ का ज्ञान अवयवशक्ति तथा दूसरे अर्थ का ज्ञान समुदायशक्ति से होता है।

परत:प्रमाण जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा हो तथा उन प्रमाणों की सहायता से जो अपने अर्थ बोध में समर्थ हो वह परतः प्रमाण है।

प्रकृति जो प्रकृष्ट रूप से कार्य करती है वह प्रकृति है।

प्रतिविषय घट, पट आदि प्रत्येक विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय प्रतिविषय है।

प्रत्ययसर्ग जिससे प्रतीति अर्थात् ज्ञान हो, उसे प्रत्यय या बुद्धि कहते हैं, उसका सर्ग प्रत्ययसर्ग है।

प्रधान प्रकृष्टरूप से जहाँ सब कुछ धारण किया जाता है वह प्रधान है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् की साम्यावस्था भी प्रधान है।

प्रमा प्रमा सन्देहरहित, सत्य तथा पहले से अज्ञात विषय से सम्बद्ध चित्त का व्यापार है। यह गौण प्रमा है। इस चित्त के व्यापार से पुरुष में उत्पन्न होने वाला बोध प्रमा है। यह मुख्य प्रमा है तथा यह ज्ञानप्रक्रिया का फल है। इस मुख्यप्रमा का साधन ही प्रमाणभूत गौणप्रमा है।

प्रमाण जिसके द्वारा यथार्थज्ञान अर्थात् प्रमा की प्राप्ति होती है, वह प्रमाण है।

प्रमेय प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायें, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा पुरुष ये सभी पच्चीस तत्त्व प्रमेय हैं।

फलदाता बुद्धि में ही धर्म एवं अधर्मरूप कर्मबीज स्थित होकर सुख एवं दु:ख रूप भोग को उत्पन्न करता रहता है। अतः कर्मबीज ही भोग रूप फल का दाता है।

बन्धन विपर्यय से अर्थात् तत्त्वज्ञान के अभाव से बन्धन

होता है। वह बन्धन प्राकृतिक, वैकृतिक तथा दाक्षिणक भेद से तीन प्रकार का है।

(i) प्राकृतिकबन्धन प्राकृतिकबन्धन वह है जहाँ प्रकृति को पुरुष मानकर व्यवहार किया जाता है।

(ii) वैकृतिकबन्धन वैकृतिकबन्धन वह है जहाँ प्रकृति के परिणामभूत इन्द्रिय, अहङ्कार और बुद्धि आदि में पुरुष भाव होता है तथा उसके आधार पर व्यवहार सम्पन्न किया जाता है।

(iii) दाक्षिणकबन्धन इष्ट और आपूर्त कर्मों से दाक्षिणक बन्धन होता है। पुरुष तत्त्व को नहीं जानने वाला तथा स्वर्ग आदि कामना से इष्ट और पूर्त कर्म करने वाला व्यक्ति जिस बन्धन में पड़ता है, वह दाक्षिणक बन्धन है।

भाव मुख्यरूप से भाव आठ हैं- धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य। अन्य दृष्टि से भाव तीन प्रकार के हैं - सांसिद्धिक (स्वतः सिद्ध), प्राकृतिक (अकस्मात् उत्पन्न) और वैकृतिक (नैमित्तिक)।

(i) सांसिद्धिकभाव जैसे सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए भगवान् कपिल के धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, ये चार भाव साथ ही उत्पन्न हुए। अतः उन्हें सांसिद्धिक भाव कहते हैं।

(ii) प्राकृतिकभाव ब्रह्मा के सनकादि चार पुत्रों में सोलह वर्ष की अवस्था में कार्य-कारणपूर्वक धर्म आदि चार भाव उत्पन्न हो गये, जैसे अकस्मात् किसी को निधि की प्राप्ति हो जाती है।

(iii) वैकृतिकभाव आचार्य आदि की मूर्ति को निमित्त बनाकर उत्पन्न होने वाले धर्म आदि वैकृतिक भाव हैं। आचार्य को निमित्त बनाकर ज्ञान होता है। ज्ञान से वैराग्य, वैराग्य से धर्म तथा धर्म से ऐश्वर्य होता है। इस प्रकार ये चार भाव हम लोगों में भी विद्यमान हैं।

विपर्यय — अज्ञान विपर्यय है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र तथा अन्धतामिस्र नाम से पाँच विपर्यय विशेष हैं।

(i) तमस् — पुरुषभिन्न प्रकृति, महत्, अहङ्कार और पाँच तन्मात्राओं में पुरुषभावना अविद्या या तमस् है। प्रकृति आदि के आठ होने से यह आठ प्रकार का है।

(ii) मोह — देवता अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर अपने अमरत्व का अभिमान करते हुए इन अणिमा आदि ऐश्वर्यों को नित्य मानते हैं। यह अस्मिता या मोह है। मोह के विषय ऐश्वर्य के आठ प्रकार के होने के कारण यह भी आठ प्रकार का है।

(iii) महामोह — दिव्य और लौकिक रूप से दस प्रकार के शब्द, स्पर्श आदि राग के उत्पादक विषयों में राग या आसक्ति महामोह है। यह अपने विषय के दस प्रकार के होने के कारण स्वयं भी दस प्रकार का है।

(iv) तामिस्र — द्वेष को तामिस्र कहते हैं, जो अठारह प्रकार का है। दस प्रकार के विषय स्वरूप से ही राग के उत्पादक हैं। अणिमा आदि ऐश्वर्य स्वरूप से राग के उत्पादक नहीं हैं, किन्तु राग के उत्पादक शब्द आदि के उपाय हैं। ये शब्द आदि भोग्य रूप में उपस्थित होने पर एक-दूसरे से उपहत होते रहते हैं। इनके उपाय होने के कारण अणिमा आदि भी अनिष्टकारी हो जाते हैं। इस प्रकार दस शब्द आदि विषयों के साथ अणिमा आदि ऐश्वर्य मिल कर अठारह हो जाते हैं। उपर्युक्त अठारह का विषय द्वेष या तामिस्र है। अपने आश्रय के अठारह प्रकार के होने से यह द्वेष भी अठारह प्रकार का है।

(v) अन्धतामिस्र — अभिनिवेश अर्थात् भय अन्धतामिस्र है। देवता अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर शब्द आदि विषयों

का भोग करते हुए डरते रहते हैं कि हमारे शब्द आदि भोग तथा उनके अणिमा आदि उपाय असुरों द्वारा विनष्ट न कर दिए जाये । यही भय अभिनिवेश या अन्धतामिस्र है।

विराग — राग का अभाव विराग है।

(i) यतमान — राग, द्वेष आदि चित्त के दोष हैं। इनके द्वारा इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त की जाती हैं। इन विषयों में ये इन्द्रियाँ प्रवृत्त न हों, इसके लिए इन दोषों की शुद्धि अपेक्षित है। एतदर्थ किया गया आरम्भरूप प्रयत्न यतमान नामक वैराग्य है।

(ii) व्यतिरेक — राग, द्वेष आदि चित्त के दोषों के शमन करने के प्रयत्न करने पर कुछ तो शान्त हो जाते हैं और कुछ भविष्य में शान्त होने को रह जाते हैं। इस प्रकार इनके शान्त होने में पौर्वापर्य या क्रम उपस्थित होने पर भविष्य में बचे हुए दोषों को शान्त करने के लिये प्रयत्न करना व्यतिरेक नामक वैराग्य है।

(iii) एकेन्द्रिय — यतमान एवं व्यतिरेक के द्वारा नष्ट राग, द्वेष आदि का इन्द्रिय की प्रवृत्ति में असमर्थ हो जाने के कारण शुद्ध किन्तु विषय की इच्छा के रूप में बचे हुए दोषों का मन में रह जाना एकेन्द्रिय नामक वैराग्य है।

(iv) वशीकार — सुखरूप चन्दन, माला आदि दृष्ट विषय तथा तथा स्वर्ग आदि वैदिक विषय प्राप्त हो जाने पर भी उनमें उत्सुकता मात्र का अभाव वशीकार नामक वैराग्य है।

विषय — जो विषयी अर्थात् बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपने आकार से आकारित कर उसे उसी रूप में प्रस्तुत कर देते हैं, वे विषय हैं। पृथिवी, जल, तेजस्, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श,

शब्द, उपस्थ, पायु, पाद, पाणि, वाक्, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वचा, कर्ण, मनस्, अहङ्कार, बुद्धि, प्रकृति तथा पुरुष ये पच्चीस तत्त्व तथा सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, काम, सङ्कल्प आदि विषय हैं।

(i) दिव्य — शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इनका सूक्ष्मरूप पाँच तन्मात्र हैं जो योगियों के ज्ञान का विषय होने से दिव्य हैं।

(ii) अदिव्य — शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का स्थूल रूप भौतिक है। ये सामान्य मनुष्यों के ज्ञान का विषय होने से अदिव्य हैं।

व्यक्त — महत्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रायें, ग्यारह इन्द्रियाँ एवं पाँच महाभूत व्यक्त हैं।

व्यापक — व्याप्य जिसके साथ सम्बद्ध हो वह व्यापक है। यही लिङ्गी है।

व्याप्य — सन्दिग्ध तथा निश्चित इन दोनों उपाधियों के निराकरण पूर्वक जो वस्तु के स्वभाव से सम्बद्ध हो, वह व्याप्य है। व्याप्य ही लिङ्ग है।

लिङ्ग — अज्ञात अर्थ का ज्ञान कराने वाला लिङ्ग है।

लिङ्गी — लिङ्गी का अर्थ व्यापक है।

शब्दवृत्ति — शब्दवृत्ति पद और पदार्थ का सम्बन्ध है। यह तीन प्रकार का है – प्रसिद्ध, लक्षणा एवं गौणी।

(i) प्रसिद्धवृत्ति — प्रसिद्ध नामक पद की शक्ति व्यक्ति से अभिन्न उसकी जाति में रहती है, जैसे 'गो' पद की शक्ति 'गो' अर्थ से अभिन्न उसकी 'गोत्व' जाति में स्थित है।

(ii) लक्षणावृत्ति — शक्य का सम्बन्ध लक्षणा है।

(a) जहल्लक्षणा– 'गङ्गा में गाँव है'– यहाँ गङ्गा पद में शक्य 'जलप्रवाह' से सम्बद्ध तट का ज्ञान कराने वाली शक्ति जहल्लक्षणा है।

(b) अजहल्लक्षणा	शक्य और लक्ष्य दोनों का बोध कराने वाली शक्ति अजहल्लक्षणा है। जैसे 'छत्रधारी पुरुष जाते हैं' यहाँ शक्य 'छत्रधारी व्यापारियों के प्रधान' के साथ लक्ष्य 'अन्य व्यापारियों' का ज्ञान अजहल्लक्षणा से होता है।
(c) जहदजहल्लक्षणा	शक्यता के अवच्छेदक को छोड़कर व्यक्ति मात्र का ज्ञान कराने वाली शक्ति जहदजल्लक्षणा है। जैसे- 'वह यह पुरुष है' - यहाँ तत्काल एवं एतत्काल शक्यता के अवच्छेदक हैं। तत्काल एवं एतत्काल से अवच्छिन्न शक्यतावाची 'वह' और 'यह' इन दोनों पदों के अर्थों को छोड़कर केवल लक्ष्य अर्थ 'पुरुष' का ज्ञान जहदजहल्लक्षणा से होता है।
(iii) गौणी	गौणी दो प्रकार की है।
(a) प्रथम प्रकार की गौणी	जैसे 'बालक सिंह है' यहाँ 'इदम्' पद का विशेष्य रूप में प्रयोग नहीं किया गया है। विशेष्य रूप में 'बालक' पद का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार विशेष्य वाचक पद 'बालक' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंह' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है।
(b) द्वितीय प्रकार की गौणी	'यह सिंह है' - यहाँ 'इदम्' पद का प्रयोग विशेष्य रूप में किया गया है। इस विशेष्य वाचक पद 'इदम्' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंह' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है।
शाब्दबोध के कारण	शाब्दबोध की प्रक्रिया में आसत्तिज्ञान, आकाङ्क्षाज्ञान, योग्यताज्ञान और तात्पर्यज्ञान कारण है ।
(i)आसत्ति	सम्बन्ध के अनुयोगी और प्रतियोगी पदों का बाधा रहित होकर उपस्थित होना आसत्ति है। उसका ज्ञान शाब्दबोध का कारण है। भिन्न-भिन्न समय में एक साथ उच्चरित न होने वाले 'गाय को' एवं 'ले

आओ' पदों से बने हुए 'गाय को ले आओ' आदि वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि यहाँ आसत्ति का अभाव है ।

(ii) आकाङ्क्षा जो पद जिस पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता उस पद के द्वारा साहचर्य भाव से उस पद को उपस्थित करना आकाङ्क्षा है। जैसे कारक पद क्रिया पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता, अत: सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न करने के लिए कारक पद का साहचर्य भाव से क्रिया पद को उपस्थित करना आकाङ्क्षा है। 'गाय, घोड़ा, पुरुष, हाथी' आदि वाक्यों में कारक पद गाय, घोड़ा आदि का क्रियापद से सम्बद्ध नहीं होने से वाक्य ज्ञान नहीं होता। अत: ऐसे वाक्य आकाङ्क्षाज्ञान के अभाव के कारण प्रमाण नहीं हैं।

(iii) योग्यता एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध योग्यता है। इस ज्ञान के अभाव में 'आग से सींचता है' यह वाक्य प्रमाण नहीं है।

(iv) तात्पर्य वक्ता के द्वारा जिस प्रकार के अर्थज्ञान की इच्छा से वाक्यों का उच्चारण होता है, वैसी इच्छा तात्पर्य है। तात्पर्यज्ञान के अभाव में 'सैन्धव लाओ' इस वाक्य में कहीं 'घोडा' और कहीं 'नमक' का ज्ञान नहीं हो सकेगा।

षष्टितन्त्र षष्टितन्त्र साङ्ख्य शास्त्र का एक प्रामाणिक एवं प्राचीन किन्तु अनुपलब्ध ग्रन्थ है।

षष्टिपदार्थी प्रधान का अस्तित्व, प्रधान का एक होना, पुरुष के लिये प्रधान की सार्थकता, पुरुष की प्रधान से भिन्नता, प्रधान का पुरुष के लिये होना, पुरुष का अनेक होना, कैवल्य की अवस्था में प्रकृति और पुरुष का विवेक, कैवल्य से पूर्व प्रकृति और पुरुष

का संयोग, स्थूल और सूक्ष्म तत्त्व तथा पुरुष में कर्तापन का अभाव- ये दस मौलिक तत्त्व हैं। बुद्धि के पाँच विपर्यय, नौ तुष्टियाँ, अट्ठाईस अशक्तियाँ तथा आठ सिद्धियाँ-ये पचास तत्त्व हैं। कुल मिलाकर साङ्ख्य में साठ तत्त्व रहने के कारण इसे षष्टिपदार्थी कहा गया है। उपर्युक्त दस मौलिक तत्त्वों में एकत्व, अर्थवत्त्व, पारार्थ्य- प्रधान के लिये; अन्यत्व, अकर्तृत्व, बहुत्व- पुरुष के लिये; अस्तित्व, वियोग, योग प्रकृति और पुरुष दोनों के लिये तथा वृत्ति स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों के लिये कहे गये हैं। उपर्युक्त तत्त्वों के आधार पर साङ्ख्यकारिका षष्टिपदार्थी के नाम से भी जाना जाता है।

षाट्कौशिक माता-पिता से उत्पन्न छः कोशों से युक्त स्थूलशरीर षाट्कौशिक है। इसमें लोम, रक्त और मांस माता से, तथा नाड़ियाँ, हड्डियाँ और मज्जा पिता से प्राप्त होते हैं।

सम्बन्ध साङ्ख्य में सम्बन्ध दो प्रकार के हैं-संयोगसम्बन्ध और तादात्म्यसम्बन्ध।

(i) संयोगसम्बन्ध कार्य और कारण भाव को प्राप्त नहीं करने वाले दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है। जैसे 'दण्डधारी पुरुष' में दण्ड और पुरुष ऐसे दो पदार्थों में एक पदार्थ 'दण्ड' दूसरे पदार्थ 'पुरुष' का कारण नहीं है। साथ ही 'पुरुष' भी 'दण्ड' का कार्य नहीं है। इस प्रकार कार्य-कारणभाव को अप्राप्त 'दण्ड' और 'पुरुष' के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है। संयोगसम्बन्ध को भेदसम्बन्ध भी कहते हैं।

(ii) तादात्म्यसम्बन्ध कार्य और कारणभाव को प्राप्त हुए दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य है। जैसे- महत् आदि व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति के बीच का सम्बन्ध

तादात्म्य सम्बन्ध है, क्योंकि अव्यक्त प्रकृति महत् आदि व्यक्त का कारण है तथा महत् आदि व्यक्त उसका कार्य है। इस प्रकार इन दोनों पदार्थों के कार्य-कारणभाव को प्राप्त किये जाने से दोनों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्यसम्बन्ध है। तादात्म्यसम्बन्ध को अभेदसम्बन्ध भी कहते हैं।

सर्ग — गुणों का प्रवृत्तिरूपकार्य सर्ग है।

साक्षी — विषय को देखनेवाला साक्षी होता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति जिसके दर्शन के लिये विषय को प्रस्तुत करती है वह साक्षी है। जिस प्रकार लोकव्यवहार में वादी और प्रतिवादी के विवादविषय को तटस्थ साक्षी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, उसी प्रकार प्रकृति भी अपने द्वारा प्राप्त विषय को पुरुष के लिये प्रस्तुत करती है। अत: पुरुष साक्षी है।

सिद्धि — ऊह, शब्द, अध्ययन, त्रिविध दु:ख विनाश, सुहृत्प्राप्ति तथा दान ये आठ सिद्धियाँ हैं।

(i) **ऊहसिद्धि** — तर्क अर्थात् शास्त्रानुकूल युक्तियों से शास्त्रोक्त विषय की परीक्षा ऊह है और यह परीक्षा सन्दिग्ध पूर्वपक्ष के निराकरण द्वारा उत्तर पक्ष या सिद्धान्त पक्ष की स्थापना है। इसे ही शास्त्रज्ञ मनन कहते हैं तथा यही ऊहसिद्धि है।

(ii) **शब्दसिद्धि** — शब्द से अर्थज्ञान होना शब्द नामक सिद्धि है।

(iii) **अध्ययनसिद्धि** — शास्त्रविधिपूर्वक गुरुमुख से अध्यात्म विद्याओं का श्रवण अध्ययन नामक सिद्धि है।

(iv) **सुहृत्प्राप्ति** — साधक युक्तियों के द्वारा स्वयं परीक्षा किये हुए शास्त्रार्थ या सिद्धान्त में तब तक विश्वास नहीं करता जब तक कि गुरु, शिष्य और सहपाठियों के साथ परस्पर संवाद नहीं कर लेता। इसलिये सुहृदों अर्थात् गुरु, शिष्य तथा सहपाठियों के साथ परस्पर संवाद प्राप्त होना सुहृत्प्राप्ति है।

(v) दान — 'दान' पद की निष्पत्ति शोधन अर्थ परक दैप् धातु से होने के कारण उसका अर्थ विवेकज्ञान की शुद्धि है। सन्दिग्ध और विपरीत ज्ञान तथा उनके संस्कारों का परिहार होने पर विमल हुए चित्तवृत्तिप्रवाह में विवेकज्ञान की स्थिति विवेकज्ञान की शुद्धि अर्थात् दान है।

(vi-viii) त्रिदुःखविघात मनुष्य आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीन प्रकार के दुःखों से सन्तप्त होकर उनके प्रतीकार के लिए ऊहसिद्धि, अध्ययनसिद्धि और शब्दसिद्धि को प्राप्त कर ज्ञान द्वारा कैवल्य प्राप्त करता है। इस प्रकार तीन प्रकार के दुःख के विघात के लिए ऊह आदि तीनों सिद्धियों का उपयोग करता है। यही त्रिदुःखविघातरूप तीन सिद्धियाँ हैं।

सूक्ष्मशरीर — पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें, मन, बुद्धि, अहङ्कार- इन अठारह का समूह सूक्ष्मशरीर है।

स्वतःप्रमाण — जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा न हो तथा जो अपने अर्थबोध में स्वयं समर्थ हो वह स्वतः प्रमाण है।

स्वर्ग — जो दुःख से रहित हो, जिसका कभी नाश न हो, इच्छा मात्र से जिसकी प्राप्ति हो जाय वही सुख स्वर्ग है। दूसरे शब्दों में दुःख का विरोधी सुखविशेष स्वर्ग है।

कारिकाओं की अकारादिक्रमसूची

शे

स

सा

स्वा

सू

हे